॥ श्री ॥

लघुपाराशरी
एवं
मध्यपाराशरी

"हिन्दी विजया" व्याख्याकार
पं० केदारदत्त जोशी

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली वाराणसी पटना बंगलौर मद्रास

प्रथम संस्करण : वाराणसी, १९८४
पुनर्मुद्रण : दिल्ली, १९९४

© मोतीलाल बनारसीदास

बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली ११० ००७
चौक, वाराणसी २२१ ००१
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
१६ सेन्ट मार्क्स रोड, बंगलौर ५६० ००१
१२० रॉयपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४

मूल्य : रु० ४८

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली ११० ००७ द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस, ए-४५ नारायणा, फेज-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रित

॥ श्रीः ॥

विषय सूची

क्रम	पृष्ठ
लघुपाराशरी	
१—संज्ञाध्यायः	१
२—योगाध्यायः	६०
३—अथायुर्दायाध्यायः	६६
४—दशाफलाध्यायः	७२
५—मिश्रकाध्यायः	७५
मध्यपाराशरी	
६—प्रथमः परिच्छेदः	७७
७—द्वितीयः परिच्छेदः	८०
८—तृतीयः परिच्छेदः	८२
९—चतुर्थः परिच्छेदः	८४
१०—पञ्चमः परिच्छेदः	८७
११—षष्ठः परिच्छेदः	९५
१२—सप्तमः परिच्छेदः	९८
१३—अष्टमः परिच्छेदः	१०२

॥ श्रीः ॥

"ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तुते ।"

कुलदेव्यै नमः

फलित ज्यौतिष का चमत्कार

"लघुपाराशरी"

सिद्धान्त-संहिता और होरा नामक त्रिस्कन्ध ज्यौतिष शास्त्र मर्मज्ञ आचार्य वराहमिहिर की "बृहत्संहिता" या "वाराही संहिता" के नवत्सर सूत्राध्याय का १६ वाँ श्लोक यहाँ पर स्मृति पथ में आ रहा है कि—

"अप्यर्णवस्य पुरुषः प्रतरन्कदाचिदासादयेदनिलवेगवशेनपारम् ।
न त्वस्य कालपुरुषाख्यमहार्णवस्य गच्छेत्कदाचिदनृषिर्मनसापि पारम् ॥"

समुद्र में तैरता हुआ मानव, वायुवेग से समुद्र को पार कर सकता है, किन्तु कालपुरुषसंज्ञक ज्यौतिषशास्त्ररूप महान् सागर के दूसरे किनारे तक, ऋषि मुनियों के अतिरिक्त वायुवेग तुल्य गति सम्पन्न मानव भी नहीं पहुँच सकता है ।

अपार शास्त्र सागर पारङ्गत त्रिकालदर्शी ऋषि महर्षियों से लोकहिताय शास्त्रों की रचना एवं शास्त्रों का सम्बर्द्धन क्रम अद्यावधि प्रचलित है, और ज्यौतिष सागर की गहराई पर पहुँच कर महामुनि "पराशर" को इस अनन्त ग्रन्थ रत्न की उपलब्धि हुई है, समग्र ज्योतिर्विद समाज के लिए भी जो सुखेन सुलभ हुई है ।

यह पराशर मुनि प्रदत्त पाराशरीय ज्योतिष है । ज्यौतिषशास्त्र या होराशास्त्र दोनों समानार्थक विषय हैं तदनुसार होराशास्त्र, ऋषि पराशर प्रदत्त होने से इसे पाराशरी होरा शास्त्र कहे जाने की प्रथा चली है ।

कालान्तर में शोधकर्त्ता विद्वानों से पाराशरीय ज्योतिष में (१) बृहत्पाराशरी होरा, (२) मध्य पाराशरी होरा एवं (३) लघुपाराशरी होरा इस प्रकार एक ही ज्यौतिषतन्त्र के तीन भेद लोक विश्रुत हुये हैं ।

एक ग्रन्थ के उक्त तीन भेदात्मक ग्रन्थ त्रितय में ज्यौतिष फलित के अनेक विषयों का सम्यगध्ययन है, तत्रापि लघुपाराशरी नाम ग्रन्थ ने, ग्रन्थज्ञानसागरमन्थन से प्राप्त-मक्खन की जगह पर अपना इकाई का एक स्थान नियत कर दिया है ।

बृहत्पाराशर होराशास्त्र" नाम का एक विशाल ग्रन्थ है । तथा लघुपाराशरी ग्रन्थ में मात्र ६ परिच्छेद श्लोक संख्या ४१ ही है । तथा मध्यपाराशरी में ८ परिच्छेदों में श्लोक संख्या कुल १८८ है ।

लघुतम लघुपाराशरी ग्रन्थ में श्लोक संख्या की सर्वाल्पता के बावजूद ग्रन्थ सारगर्भित है और आशय गाम्भीर्य से परिपूर्ण है। अनेकविध जातक ग्रन्थों के अनेक विध फलादेश एक तरफ और लघुपाराशरी का विंशोत्तरी दशा अन्तर प्रथन्तर, सूक्ष्म और प्राणदशा के समयों की घटनाएँ सही हैं चमत्कार पूर्ण भी हैं।

निःसन्देह इस लघुपाराशरी ग्रन्थ से फलित ज्योतिष में सविशेष आवश्यक पूर्णता आ जाती है।

इत्यादि कथन के अनन्तर "पाराशरी" इस नाम करण से इस ग्रन्थ के प्रणेता महामुनि पराशराचार्य ही होते हैं। जैसा ऋषि कश्यप के कथनानुसार ज्योतिषशास्त्र की रचना में भगवान् सूर्य सहित १८ महर्षियों का उल्लेख हुआ है जिनमें पराशर मुनि भी हैं। यथा—

पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः॥
लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योतिश्शास्त्र प्रवर्तकाः॥"

(१) सूर्य, (२) पितामह, (३) व्यास, (४) वसिष्ठ, (५) अत्रि, (६) पराशर, (७) कश्यप, (८) नारद, (९) गर्ग, (१०) मरीचि, (११) मनु, (१२) अङ्गिरा, (१३) लोमश, (१४) पौलिश, (१५) च्यवन, (१६) यवन, (१७) भृगु, और (१८) शौनक, ये १८ महर्षिगणों की फलित ज्योतिष में जो सूक्ष्माति सूक्ष्म उपलब्धि हुई है वह लोक हिताय वेद शास्त्र के चक्षुस्थानीय (नेत्र स्थानीय) ज्योतिषशास्त्र से अनवरत विश्व का हित होता आ रहा है।

उक्त कश्यपोक्त ज्योतिश्शास्त्र प्रवर्तक ऋषि संख्या १८ की जगह १९ वाँ नाम आचार्य विश्वसृड का भी कहा गया है।

अनेकों ऋषि महर्षि और आचार्यों में भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, गौतम कणादि जैसे सर्वशास्त्रज्ञों का ज्योतिषशास्त्र रचना में योगदान नहीं रहा होगा ? अस्तु—

वेदांग ज्योतिष शास्त्र सागर में लघुपाराशरी ग्रन्थ नौका स्थानीय है जिसकी उपादेयता सारे भारत राष्ट्र में अतिप्रसिद्ध है।

ज्योतिषशास्त्र की युग गणना से द्वापरान्त कलियुगारम्भ में, महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थ रचना के समीपस्थ समय में श्री वेदव्यास जी के पूज्य पिता श्री पराशरमुनि ने भूमण्डलस्थ प्राणियों के शुभाशुभ भविष्य ज्ञान के लिए इस ग्रन्थ की रचना की होगी, जो आज से लगभग ५०८५ वर्ष पूर्व का समय था। फलित ज्योतिष के सभी ग्रन्थों का रचना काल प्रायः ईसवी पूर्व या ईसवी प्रारम्भ या आजतक चल

रहा है, इस लिए लघुपाराशरी ग्रन्थ रचना का समय सर्वप्राचीन समझते हुए गणित ज्योतिष में लगधाचार्य प्रणीत वेदाङ्ग ज्योतिषग्रन्थ की तरह फलित ज्योतिष में यह ग्रन्थ आगम है, सर्वमान्य है और दृढ प्रामाणिक भी है। जातक स्कन्ध में वराहमिहिराचार्य के बृहत्जातक ग्रन्थ की सर्वप्राचीनता प्रसिद्ध है। बृहज्जातक ग्रन्थ का लघु स्वरूप लघुजातक की तरह इस ग्रन्थ के भी बृहत्पाराशर होरा, लघु पाराशरी एवं मध्यपाराशरी नाम कहे जा सकते हैं जो वराह के पूर्व के हो सकते हैं।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ के तीन श्लोकों में, "किञ्चिद्वीणाधरमुपास्महे" (श्लोक १) "वयं पाराशरीं होरामनुसृत्य" (श्लोक २) "फलानि नक्षत्रदशाप्रकारेण विवृण्महे" (श्लोक ३), कथन से (१) हम सभी सरस्वती की उपासना करते हैं, (२) हम लोग पराशरोक्त जातक शास्त्र को यथातत्थ्य विचार कर तदनुरूप ग्रन्थ रचना कर रहे हैं, (३) तथा इस ग्रन्थ में नक्षत्र दशा प्रकार से फलित मीमांसा का विवरण कर रहे हैं, "..........इस प्रकार के बहुवचन के प्रयोगों से ज्ञात होता है कि विद्वत्समाज के तत्कालीन महर्षि ज्योतिर्विदों की सभा से महर्षि पाराशर द्वारा अनुभूत इस जातक ज्योतिष का संकलन किया गया होगा और सर्वसम्मत से इस संकलन का नाम महर्षि पराशर के स्मारक में पाराशरी विचार धारा से पाराशरी देते हुए अगाध ग्रन्थसागर को मथकर नवनीत (मक्खन) की उपलब्धि के अनुसार इस ग्रन्थ के तत्वाशय की लघुपाराशरी संज्ञा प्रसिद्ध हुई होगी।

समग्र भूमण्डल पर आकाशस्थ ग्रहों का अवश्य कोई प्रभाव होता ही है। अतएव मानव जीवन पर तो आकाशीय पदार्थों का प्रभाव होना भी स्वाभाविक है।

ज्यौतिषशास्त्र (अथवा ग्रहों का नक्षत्रों से अनेक विध सम्बन्धों का विचार) में ग्रहों की नक्षत्रों के साथ की गतिविधियों से भूमण्डल पर होने वाले शुभाशुभ भविष्य का विचार किया गया है। ग्रह नक्षत्रों की आकांशीय स्थिति का ज्ञान गणित विद्या के साथ खगोल विद्या के सम्बन्ध से ही संभव है इस लिये बहुविध ज्योतिषशास्त्र में आचार्यों से, प्रधानतः तीन विभागों से (१) सिद्धान्त या गणित स्कन्ध, (२) संहिता स्कन्ध, (३) होरा (जातक) स्कन्धों की ग्रन्थ रचना हुई हैं। इन तीनों स्कन्धों में सिद्धान्त स्कन्ध (ग्रह गोल गणित स्कन्ध) की ही प्रधानता (सर्वोपरि) आचार्यों ने कही है, जिसे आचार्य लगध से रचित अति प्राचीन वेदाङ्ग ज्योतिष में और वेदाङ्ग ज्योतिष के भाष्यकार "सोमाकर" ने अपने भावों में उच्चैरुद्घोषित भी किया है कि—

"यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्" ॥

(१) इस ग्रन्थ में—कृतिका नक्षत्र को दशा प्रारम्भ नक्षत्र, एवं सूर्य ग्रह को दशा का प्रारम्भ ग्रह कहा गया है ऐसा क्यों कहा गया होगा ?

(२) तथा सूर्य से लेकर शनि तक जैसे ७ ग्रहों का क्रम यत्र तत्र सर्वत्र फलित ज्योतिष में है, तथा ८ वां ग्रह राहु और नवां ग्रह केतु है। किन्तु दशा विचार में भी उक्त नौ ग्रहों के क्रम, सू० चं० मं० के पश्चात् बुध न होकर राहु, वृह, शनि-बुध-केतु और अन्त में शुक्र ग्रह की दशा कही गई है। इस क्रम की विभिन्नता का क्या कारण होगा ? अवश्य यह एक विचारणीय विषय हो जाता है।

(३) विंशोत्तरी दशा नामकरण से "विंशोत्तरं शतम्" १२० अंक ठीक है, सभी ग्रहों की दशा वर्षों की संख्या का योग १२० वर्ष होता है, समीचीन है तो भी १२० ÷ ९ = १३ वर्ष ४ महीना तक प्रत्येक ग्रह की दशा भोग होना चाहिए था भी तो सूर्य जैसे प्रबल ग्रह मण्डल के राजा ग्रह की दशा का मान सबसे कम ६ ही वर्ष एवं शुक्र ग्रह की दशा का मान सर्वाधिक २० वर्ष माना गया है ऐसा क्यों कहा गया होगा ? ऐसी स्थिति में आगम प्रामाण्य की ही शरण लेनी पड़ती है। ग्रहों का कक्षा क्रम से भी उक्त शंका का समाधान नहीं होने से संशय यथावत् है।

प्रथम प्रश्न-कृतिका नक्षत्र से दशा का प्रारम्भ किया जाना एक सीमा से उचित भी मालूम पड़ सकता है। जैसा शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि—

"एक द्वे त्रीणि चत्वारि वा अन्यानि नक्षत्राण्येता एवं भूयिष्ठा यत्कृतिकास्तदभूमानमेवैतदुवैदुपैति तस्मात्कृतिकास्वादधीत। एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते"

यहाँ तात्पर्य है कि कृतिका नक्षत्रों की संख्या अधिक है। कृतिका की नक्षत्र संख्या = ६ "षट्कृतिका" का भी प्रयोग शास्त्रों में हुआ है। कृतिका नक्षत्र प्राची अर्थात् पूर्व दिशा से विचलित नहीं होतीं—इत्यादि। वृषराशि खमध्य गत सूर्य की स्थिति में रात्रि शेष में प्रायः सारी भारत की जनता पूर्व में कृतिका का दर्शन कर सकती हैं। ग्रन्थ रचना काल में (द्वापरान्त काल आरम्भ) कृतिका नक्षत्र शराभाव काल की स्थिति में विषुवद्वृत्त में गणित से सिद्ध होती हैं। वर्तमान में अयन गति से कृतिका नक्षत्र ठीक पूर्व में उदय न लेकर कुछ उत्तर की तरह पूर्व में उदय लेती हैं, इत्यादि से ग्रह दशा में कृतिका नक्षत्र से आरम्भ और सूर्य ग्रह १ स्थानीय होने से नक्षत्रों में कृतिका और ग्रहों में सूर्य ग्रह की दशा प्रारम्भ कही जा सकती है।

तथा सूर्यादिक ग्रहों में दशा वर्ष संख्या जो सू = ६, चं० = १० मं० = ७, रा० = १८ वृ० = १६ श० = १९ बु० = १७ के० ७, शुक्र - २० वर्ष कहा गया है, सू + ४ = ६ + ४ = १०, चन्द्रदशा वर्ष। चन्द्र + सूर्य १० + ६ १६ वृ। २ × चं. = १० × २ २० = शुक्र। चं. + मं. या केतु १० + ७ = १७ = बुध, सू + १ = ६ + १ = ७ = मं. और केतु, एवं वृ. + १ = १७ = बुध, बुध + १ = १७ + १ = १८ राहु, राहु + १ = १८ + १ = १९ = शनि, और शनि + १ १९ + १ = २० = शुक्र तथा शुक्र ÷ २ = २० ÷ २ = १० = चन्द्रमा, चन्द्र ÷ २ + १ = ५ + १ = सूर्य इत्यादि

गणितीय सम्बन्धों की स्थिति सही तभी मानी जावेगी जबकि किसी भी ग्रह दशा की वर्षादि कल्पना की कोई युक्ति स्पष्ट हो। आगे दशा गणित के अवसर पर दशाओं से ग्रहों के ध्रुवकांक ज्ञात के अनन्तर सू + चन्द्र = बृ., बृ + ध्रु = बुध, बुध + ध्रु = राहु एवं राहु + ध्रु = शनि, शनि + ध्रुव = शुक्र ......इत्यादि विषय गणित से सही स्पष्ट हैं भी तो दशाओं की वर्षादिक अंक संख्या की मौलिकता का क्या आधार हो सकता है ? फिर भी यह विषय संशय से परे नहीं ही है।

"दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता" आचार्यों ने विंशोत्तरी दशा के अतिरिक्त, अष्टोत्तरी, त्रिभागी, कालचक्री, योगिनी, चरदशा, शूलदशा, स्वर भेद से बाल-कुमार-युवा-वृद्ध-मृत्यु स्वर प्रभृति अनेक दशाओं की यहाँ पर उपेक्षा बताई है। तदुत्तर काल में आचार्य वराहने सूर्यादि ७ ग्रहों के स्पष्ट और ८ वीं लग्न स्पष्ट की ग्रह दशाओं में अपनी उच्चराशिगत सूर्यादि ग्रहों की आयु वर्ष संख्या क्रमशः १९ + २५ + १५ + १२ + १५ + २१ + २० से आयु वर्ष कुल १२७ वर्ष कही है और राहु और केतु ग्रहों का द... युर्दाय में उल्लेख तक नहीं किया है।

त्रिस्कन्ध ज्यौतिष के होरा स्कन्ध विभागीय अनेकों ग्रन्थों की उपलब्धि के बावजूद इस ग्रन्थ में शुभाशुभ भविष्य विचार परम्परा यत्रतत्र सर्वत्र हैं। जहाँ फलित ज्यौतिष के अनेक विध अन्य ग्रन्थों में जातक विचार परम्परा की, उच्च-नीच-स्वक्षेत्र-स्वनवांशादि-षड्सप्तवर्ग अनेक वर्ग संसाधन से शुभाशुभ भविष्य का निर्णयात्मक निश्चय लिया गया है किन्तु यहाँ इस ग्रन्थ की अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा एक मात्र अलौकिता है कि केवल लग्नादि द्वादश भाव व भावस्थ ग्रहों के परस्पर के सम्बन्धों से ही शुभाशुभ भविष्य कहने का मार्ग आचार्य ने अति प्रशस्त कर दिया है। तथा अन्य शास्त्रों के समादर के साथ स्पष्ट कह भी दिया है कि

'बुधैर्भावादयः सर्वे ज्ञेया सामान्यशास्त्रतः।
एतच्छास्त्रानुसारेण संज्ञां ब्रूमो विशेषतः" ॥

जातक के शुभाशुभ भविष्य विचार के लिये, संवत्सरादि पञ्चाङ्ग लेखन, स्पष्ट ग्रह साधन, लग्नादि द्वादश भावों का गणित, लग्नादि सभी ग्रहों का गृह, उच्च होरा द्रेष्काण-चतुर्थपञ्चमषष्ठाष्टमनवमदशमैकादशद्वादशत्रिंशत्षष्टि (६०) पर्यन्त विभागों, उनके स्वामियों से, प्रत्येक ग्रह जो शुभ है उसकी शुभता में भी अशुभता, या शुभोत्तमता, तथा पापग्रह के बहुविधवर्ग विचार से पापत्व में पापाधिक्य या पापत्व के बावजूद शुभवर्गाधिक्य शुभता, तथा प्रत्येक ग्रह की तात्कालिक उदय अस्त वक्र मार्गादि गति शीलता के साथ ग्रहों का उदयास्तादि ज्ञान, दीप्तादि अनेक अवस्थाओं का ज्ञान तनुधन सहजमातृविद्यापुत्रशत्रुजायामृत्युधर्मकर्मलाभव्ययादि संज्ञा, भावाधीश ग्रह तदुपरि अन्य ग्रहों की दृष्टि या किसी की दृष्टि (कितनी मात्रा में) इत्यादि उपकरण विषयों का ज्ञान

अन्य फलित ज्योतिष शास्त्र ग्रन्थों से यथावत् किया जाना चाहिए" ऐसा आचार्य ने स्वमत व्यक्त किया है।

जन्म का सूक्ष्म समय नवजात शिशु की उत्पत्ति किस स्थिति में हुई है ? वह स्थितियाँ ज्योतिष विचार में किस लग्न नवांश से घटित हो रही हैं, (उसी लग्न नवांश को) उसी को ठीक समझ कर फलादेश करना चाहिए।

इसलिये सूक्ष्म जन्म समय कैसे ज्ञात किया जाय ?

आचार्यों का कथन है जन्मकाले तु सम्प्राप्ते "लग्नं निश्चित पंडितैः" अर्थात् जातक के जन्म समय में जो लक्षण घटित हो रहे हैं और वह लक्षण जिस लग्न नवांशादि से सही बैठ रहे हैं उसको विलोम गणित प्रक्रिया से ठीक समझ कर उसी इष्ट काल को सही इष्टकाल समझना जाहिए।

आचार्यों का और भी कथन है कि प्रसव वेदना के आरम्भ में बच्चादानी का द्वार उद्घाटित हो जाने से स्वाभाविक जलस्राव होता है। जलस्राव होने से गर्भस्थ शिशु अपने स्थान से भूमि के अभिमुख च्युत हो जाता है, चूँकि अभी भूमिगत होने में विलंब है, अतः जलस्राव समय को जन्मेष्ट समय समझना चाहिए, जैसा—

१—सूक्ष्म इष्टकाल–जलस्राव समय, जो उत्तम इष्टकाल कहा गया है।

२—अंगदर्शन समय–मध्यम इष्टकाल।

३—भूमिस्थ समय–अधम इष्टकाल।

उत्तमं जलस्रावस्यान्मध्यममंगदर्शनम्।
अधमं भूविपातस्तु स्थूलकाल इतिस्मृतः॥

सामान्यतया संक्षेप से वराहाचार्य के वृहज्जातक का सूतिकाध्याय प्रसव समय का इस स्थल पर मात्र दिग्दर्शन आवश्यक है।

(१) जन्म समय में पिता घर ही में उपस्थित थे, या विदेश में थे, या घर आ रहे थे या घर नहीं पहुँचे थे, मार्ग ही में थे, रोग ग्रस्त थे, उन्नति पथ पर थे, या स्थान-भ्रष्ट हो रहे थे आदि बात जिस लग्न नवांश से घटित हो रही हो उसी लग्न के समय को प्रसव काल समय मानना चाहिए।

(१) "शुभैः स्वायास्थितैर्जातः सर्पस्तद्वेष्टितोऽपि वा"

कभी-कभी स्त्री के गर्भाशय में सर्प के अंड़े भी पहुँचकर सर्प उत्पन्न होते हैं अथवा शिशु सर्प से लिपटा होता है अथवा बालक ही सर्पमुद्रा में होता है।

(३) किसी लग्न नवांश के कथित ग्रह योगों से जुड़वा दो या अधिक (सागर के ६० हजार तक उत्पन्न हुए थे) सन्तान होती हैं।

(४) नाल वेष्टित जातक का जन्म होता है।

(५) शिशु के अंग विभागों में, हाथ पाँव गले दाहिनी या बायीं अंग के अमुक स्थान पर नाल चिपटी थी या लिपटी थी आदि, ऐसे लक्षण प्रसव ग्रह स्थित महिलाओं से पूछकर घटित लक्षण जिस लग्न समय से ठीक होती हैं उसी को जन्मेष्ट मानना चाहिए।

(६) कुछ ग्रह योगों से जातक का जन्म परकीय पुरुष से होता है, "परेण जातं प्रवदन्ति तज्जाः"। आये दिन समाचार पत्रों से ज्ञात होता है अमुक जगह एक नवजात शिशु छोड़ा हुआ मिला।

(७) कुछ लग्न नवांशों की ग्रह स्थिति के आधार से नाव में जातक का जन्म होता है। इतिहास बताता है कि प्राक काल में व्यापारिक वर्ग अपने परिवार के साथ दीर्घसमय तक व्यापारिक कार्य साधन के लिए नाव द्वारा विदेशों की लंबी यात्रा करते थे, अतएव नाव में प्रसव होना भी संभव है।

(८) कुछ लग्न नवांशों की गति से पिता विदेश में बद्ध है (कैदखाने में) ऐसी स्थिति जब हो तो उसको इष्टकाल समझना चाहिए।

(९) जल में स्नान करते हुए भी प्रसव हो जाते हैं ऐसे ग्रहयोग से लग्न नवमांशादि से विलोम क्रिया द्वारा साधित जो इष्टकाल होगा वही सही इष्टकाल समझना चाहिए।

(१०) वन में, निर्जन स्थान में, गुप्त देश में भी जन्म होता है, ऐसी ग्रह स्थिति जिस लग्न नवमांशादि से होती है उस लग्न का समय ही इष्टकाल मानना चाहिए।

(११) श्मशान में, मंदिर में, पर्वत में, सभा में, मार्ग में, ग्रह स्थिति वश यत्र तत्र जिस लग्न से जिस स्थान में जन्म होता है ऐसे घटित लक्षण लक्षित लग्न का समय इष्टकाल होता है।

(१२) कुछ ग्रह स्थितियों से नवजात शिशु माता से त्यक्त होकर भी बडा भाग्यवान होता है, ऐसी ग्रहस्थिति जन्म लग्न समय को इष्टकाल समझें।

(१३) मातृ त्यक्त होते हुए भी शिशु अल्पायुष्य होता है और पर हस्तगत होते हुए भी पूर्णायुष्य के साथ राजयोग प्राप्त करता है आदि। इत्यादि ग्रह स्थिति संपन्न लग्न नवमांशादि का जो समय है उसी को इष्टकाल कहना चाहिए।

(१४) प्रसव गृह के समीप में जलदर्शन, वृक्षदर्शन, मंदिर दर्शन और अदर्शनीय अशुभ वस्तु, शुभ दर्शनीय शुभ वस्तु जिस लग्न से घटित हो रही है, उसे इष्टकाल मानिये।

(१५) सूतिका कक्ष में महिलाओं की संख्या अत्रापि सौभाग्यवती स्त्रियों की संख्या कितनी, विधवाओं की संख्या कितनी अथवा चिकित्सक, नर्स, आदि की संख्या क्या थी

वह संख्या जिस लग्न से सही घटित होती है उस लग्न के समय को इष्टकाल समझें।

(१६) प्रसव के पूर्व में प्रसववती माता की स्थितियों से सुभोज्य मिष्टान्न, दूध, दही या अन्य सुन्दरतम भोजन प्राप्त किया था अथवा ऐच्छिक कोई पदार्थ उपलब्ध नहीं हुआ था। इस स्थिति के लग्न काल का समय ही इष्टकाल समझें।

(१७) प्रसव समय में प्रसववती महिला सुशोभित नवीन वस्त्रों से सुसज्जित थी, वस्त्रादि अर्द्धनवीन थे, अतिजीर्ण अग्नि दग्ध थे, कीचड़ पंक लिप्त थे और रंगों में सफेद लाल-पीले-हरित आदि रंग के वस्त्र थे आदि लक्षण जिस लग्न नवमांश त्रिंशांश, द्वादशांश, द्रेष्काणांश आदि से घटित होते हैं, विलोम गणित से साधित ऐसे लग्न का जो समय होता है वही समय सूक्ष्म इष्टकाल होता है, किन्तु प्रसव कक्ष के समाज से विदित समय से लक्षण सत्य घटित होते हैं तो वह समय भी सही सूक्ष्म जन्मेष्ट है।

उक्त तथ्यों के आधार से सूक्ष्म लग्न शुद्धि का निर्णय समझ कर सूर्यादिक नौ ग्रहों की सूक्ष्म स्पष्ट राशि अंश कला विकलादि के साथ चन्द्रस्पष्टी करण में स्वरशास्त्रों की कथित तात्कालिक ग्रह साधनिका से चन्द्रमा का सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रदेश का गणितस्पष्ट भी आवश्यक हो जाता है। तथा ग्रहों में इष्ट समय का तात्कालिक वेग क्या है ? और उनकी पूर्वापरागति (अनुलोम विलोम, वक्रादि) के साथ भूमण्डल धरातल के याम्योत्तर विभागीय मापदण्ड विषुवद्वृत्त वृत्त से उत्तर दक्षिण दिग्गमन स्थिति के साथ जन्मस्थानीय अक्षांश वश उन ग्रहों में सर्वशीघ्रगतिक चन्द्रमा का, वर्त्तमान प्रसव स्थान व प्रसूतिका स्त्री की जन्म राशि नवांशादि की स्थितियों वश वर्त्तमान आकाशीय पिण्डों का इस समय किस पर किस प्रकार का प्रभाव अनुभूत हो रहा है—

इत्यादि समझते हुए चमत्कारिक फलादेश करने का ज्ञान, साहस, तपस्या और इष्ट देव की सिद्धि का समाश्रय लेना भी आवश्यक समझना चाहिए।

तथा

लघुपाराशरी से दशान्तर्दशादि के समयों को समझ कर जिस ग्रह की दशा, और जिस-जिस ग्रह की अन्तर्दशा प्रत्यन्तरदशा सूक्ष्म दशा और प्राण दशा वर्तमान में चल रही है उक्त स्पष्ट ग्रहों की स्थिति ज्ञान से उस ग्रह की सूक्ष्मेष्ट समय की दशा प्रकार की स्थितियों में किस स्थिति से उस ग्रह का आकाश में प्रचलन हो रहा है इत्यादि समझ कर दशाओं का शुभाशुभ फलादेश आवश्यक होता है। इस लिए प्रसंगागत इस विचार में ग्रहों की दश प्रकार की अवस्थाओं को भी ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

ग्रहों की स्थितियों (अवस्थाओं में) नौ भेद—जिनका मूल ग्रन्थ में उल्लेख नहीं हुआ है, और जो आवश्यक विषय इस विचारधारा से सम्बन्धित भी है उसे यहाँ दिया जा रहा है और जो इस अवसर पर उपयोगी भी है। यह निजी अनुभव भी है।

(१) दीप्त अवस्था। (२) स्वस्थ अवस्था। (३) प्रमुदितावस्था। (४) शान्त अवस्था। (५) दीनावस्था। (६) दु;खित अवस्था। (७) विकल अवस्था। (८) खल अवस्था। (९) और कोपी अवस्था, ग्रहों के उक्त नौ अवस्था के लक्षण—

(१) दीप्तावस्था का लक्षण—

जो ग्रह अपनी उच्च राशि में रहता है वह दीप्त अवस्था से गगनचर रहता है।

(२) स्वस्थावस्था के लक्षण—

जो ग्रह अपनी राशि में स्थित है वह स्वस्थ अवस्था से आकाश चारी रहता है।

(३) मुदित ग्रह लक्षण—

अधिमित्र की राशि स्थित ग्रह जिस जातक की जन्म कुण्डली में है वह ग्रह तावत्काल तक मुदित वेग से गगन में गमन करता है।

(४) शान्त ग्रह का लक्षण—

जो ग्रह अपने मित्र ग्रह की राशि में होकर अपने ग्रह की राशि में होकर अपने ग्रह गोलीय विमण्डल से भूमण्डलस्थ प्रत्येक प्राणी के साथ अपनी रश्मियों का प्रभाव देता है उस ग्रह को शान्त ग्रह उस समय तक शान्त ग्रह कहा जाता है।

(५) समग्रह का लक्षण—

जो ग्रह जातक शास्त्रों में वर्णित मित्र शत्रु अधिमित्र और अधिशत्रु विभागीय राशियों से सम्बन्धित ग्रहों के सम्बन्धों में न मित्र न शत्रु अर्थात् उदासीन (सम) ग्रह की राशि में जन्म कुण्डली में बैठा है उस ग्रह को दीन ग्रह कहा जाता है।

(६) दुखित अवस्था के ग्रह का लक्षण—

जो ग्रह साक्षात् रूपेण अपने शत्रु घर की राशि में बैठा होता है, वह ग्रह तत्काल में दुखित अवस्था का कहा गया है।

(७) विकल ग्रह का लक्षण—

जो ग्रह जातक के जन्म समय में किसी भी पाप ग्रह के साथ बैठा होता है वह ग्रह स्वाभाविक शुभ ग्रह भी क्यों न हो विकल हो जाता है इस लिए ऐसी स्थिति में ग्रह की विकल अवस्था कही जाती है।

(८) खलावस्थागत ग्रह—

जो ग्रह स्वाभाविक शुभ ग्रह हो या स्वाभाविक पाप ग्रह हो और खल ग्रह अर्थात् पाप ग्रह की राशियों में बैठा रहता है वह आकाशचारी ग्रह तत्काल में खलावस्थागत कहा जाता है।

(९) कोपी अवस्थागत ग्रह लक्षण—

सूर्यादिक नौ ग्रहों में जो कोई भी ग्रह "अर्क संयुतः" सूर्य ग्रह के साथ अर्थात् सूर्य जिस राशि में है उसी राशि में वह भी ग्रह बैठा होता है तो वह ग्रह कोप से गमन चारी होता है अतः उस ग्रह को कोपी अवस्थागत समझना चाहिए।

इत्यादि तारतम्यों को समझते हुए बुद्धिमान् ज्योतिषी की परिष्कृत बुद्धि उक्त आधार से यह भी समझने में समर्थ होनी चाहिए जैसे कि मंगल ग्रह सूर्य के साथ सिंह राशि में है या कर्क, सिंह राशि नवम पञ्चमादि में है तो सूर्य साहचर्य से मंगल ग्रह उस समय कोपी लक्षण से चारशील हो रहा है तस्मात् ऐसे मंगल ग्रह की दशादि— प्राण तक में मानव अपने वर्धमान रक्तचाप से परिवार और समाज को भी क्षति पहुँचा सकता है या चिकित्सकों को भी पराजित कर अपने कोप से अपने तक को भी समाप्त कर सकता है।

उपरोक्त विषयों को बुद्धिस्थ कर विषय को समझते हुए इस लघुपाराशरी ग्रन्थ के अनुसार द्वादश भावों की मात्र संज्ञा या सम्बन्ध यहाँ पर बताये जा रहे हैं। आचार्य के मत से भी अन्य फलि ज्यो० के सामान्य ग्रन्थों की अपेक्षा यह ग्रन्थ ज्योतिष में विशेष है या विशेष शास्त्र है।

भावादयः सर्वे से लग्नादि द्वादश भावों का उल्लेख करते हुए यहाँ पर मुझे "भावादयः" शब्द से "अयं भावः" "यह अर्थ है" इत्यादि की तरह अनेक आवश्यक अर्थ या विचारों के लिए अन्य फलित ज्योतिष ग्रन्थों का अनुशीलन आवश्यक है। ऐसा भाव या अर्थ भी उक्त पद्य से ध्वनित होता है। इस विषय की स्पष्टता के लिए कुछ अनुभव पाठकों के हिताय उपस्थित करना आवश्यक समझ कर यहाँ पर संक्षेप से दिया जा रहा है।

विशेष व्यावर्णित उक्त ग्रहों की दशादि और द्वादश भावों एवं भावेश ग्रहों के परस्पर के सम्बन्धों के विचार के लिए शास्त्रान्तर के कुछ विशेष विचारों को भी ध्यान में रखना चाहिए जिससे दशादि विचार में दैवज्ञ (ज्योतिर्विद) के चमत्कार द्वारा समाज में सुयश के साथ फलित ज्योतिष में जनता की आस्था वृद्धि हो सकेगी।

यथा—जन्म कुण्डली का निर्माण सही रूप में जैसे और जिस सूक्ष्म गणित के पञ्चाङ्ग से हो सर्व प्रथम इस पर ध्यान देकर जातक की जन्म कुण्डली की रचना करली चाहिए।

फलिताचार्यों के उन अनुभवगम्य जातक लक्षणों के मिलान को ठीक से समझकर सूक्ष्म लग्न का साधन सर्वोपरि होना चाहिए।

आधुनिक युग में यत्रतत्र सर्वत्र विश्व में स्टैंडर्ड टाइम स्थिर समय के अनुसार चिकित्सालयों के प्रसव गृह में बाहुल्येन प्रसव होते देखे जा रहे हैं।

यतः इन के स्टैंडर्ड समयों में सन्देह की गुन्जाइश तो नहीं है तथापि प्राकृतिक और अद्भुत नर सृष्टि की रचना में, जन्म और मृत्यु जो ध्रुव सत्य है, उसका सही समय जानकर बता देना कठिन है। जो मानवज्ञान सीमा के भीतर है भी तो भी ज्योतिषी के लिए कह देना अत्यन्त कठिन सा ही होगा। तथापि आचार्य महर्षि वराहमिहिर (जैसे खगोलज्ञ त्रिस्कन्ध ज्योतिष शास्त्र पारङ्गत) ने उक्त सम्बन्ध में जातक के जन्मेष्ट की शुद्धता की जाँच (पड़ताल) जातक लक्षणों को समझ कर ही लग्न और नवांश की शुद्धता करनी या समझने का आदेश दिया है। माता पिता या संरक्षक पारिवारिक से बताये गये जन्म समय के अनुसार आचार्य वाराह के जातक लक्षण घटित होते हैं तो वह समय और तदाधारेण गणित सिद्ध लग्न ही जातक की सही लग्न कही जानी चाहिए। यदि शास्त्रों में जातक (नवजात शिशु) के लक्षण आदिष्ट समयानुसार नहीं मिल रहे हैं तो, लक्षण जिस लग्न नवांशादि से मिलते हैं उसी को लग्न मान कर विलोम गणित से जातक का जन्म समय का ज्ञान स्पष्ट करना चाहिए वही इष्ट काल सही इष्ट काल होता है।

आचार्य ने विंशोत्तरीदशा को सर्वोपयोगी सर्वश्रेष्ठदशा कहते हुए उसके साधन की प्रक्रिया नहीं कही है तथापि विंशोत्तरीदशा साधन की गणित प्रक्रिया प्रसंग पर इस व्याख्यान में दिखाते हुए प्रत्येक ग्रह की दशा के साथ उस ग्रह की अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा सूक्ष्मदशा और प्राण दशा का साधन बताते हुए उक्त दशाओं में प्रत्यन्तर्दशा तक की सारिणी ग्रन्थ में दे दी गई है जो सर्वजन हिताय होती है और होगी।

यद्यपि एक लग्न की स्थिति से लग्नादि द्वादश भावगत जो राशियाँ होती हैं, वह भाव राशियाँ दूसरे लग्न की स्थिति से दूसरी होंगी और प्रत्येक लग्न से केन्द्र कण्टक पणफर आपोक्लिम उसी लग्नानुसार विभिन्न होंगी तथा केन्द्रेश, त्रिकोणेश, त्रिषडायेश द्विर्द्वादशेश, तृतीय लाभेश, चतुर्थदशमेश, पञ्चम नवमेश, षष्ठाष्टमेश, सप्तसप्तमेश ग्रह भी विभिन्न होंगे तब भी इस व्याख्यान में ग्रहों के सम्बन्ध विचार के अवसर पर अमुक लग्न राशि से अमुक केन्द्र त्रिकोणेश और अमुक से अमुक ग्रह होते हैं, इत्यादि इस प्रकार का निःसंशय व्याख्यान स्पष्ट कर दिया है, जिसका विजया-व्याख्यान विद्यानुरागियों एवं ज्योतिष प्रेमियों एवं अध्ययन मननशील छात्रों के लिए सुविधाकर और रुचिकर भी कर दिया गया है।

इस लघु ग्रन्थ की विजया-व्याख्या मेरे द्वारा असामर्थ्य में भी कारण लिखने का सौभाग्य अकस्मात् प्राप्त हुआ है।

ज्योतिष विषय के अनेकों ग्रन्थों पर अनेको विद्वानों द्वारा टीका व्याख्यान प्राक्काल से आज तक होते आ रहे हैं। जिस पर भी मेरी बुद्धि से इस लघुपाराशरी ग्रन्थ की ज्योतिष जगत में उपादेयता होने से इस ग्रन्थ पर की टीकाओं के नियत आँकड़े नहीं बताए जा सकते। यह भी नहीं कि और अनुपलब्ध ग्रन्थों की तरह यह

ग्रन्थ भी अनुपलब्ध है अपि च यह ग्रंथ सर्वत्र सुखेन सुलभ है तथा मेरी समझ से विभिन्न भाषाओं की भी इस पर टीकाएँ लिखी गई होंगी, जो उपलब्ध भी है तो इस ग्रंथ पर पुनः टीका की कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिए थी तो भी इस वार्धक्य की असामर्थ्य अवस्था में भी इस ग्रंथ पर व्याख्या लिखने और इसका प्रकाशन भी किया जाना चाहिए, सकारण ऐसी समस्या उत्पन्न हुई। जिसका कारण है मेरा चतुर्थ पुत्र श्री तारकेश चन्द्र जोशी तथा उसके सहपाठी वर्ग को, जिसे अध्यापन कराते समय उक्त पुस्तक की टीका करने की प्रेरणा छात्र वर्ग के अत्यधिक अनुरोध से हुई तथा यह कार्य किया ही जाना चाहिए, उत्साह उत्पन्न हुआ, साहस भी हुआ। छात्रों की शुभ इच्छा पूर्ण करने के उपरान्त व्याख्या लिखने में सफल हुआ और ग्रंथ, मर्मज्ञ पाठकों के हस्त गत हो सका।

महाराष्ट्र की वैदिक ब्राह्मण संस्कृति

आर्य संस्कृति अपने मूल स्रोत से प्रचलित होकर अद्यावधि विश्व में यत्र तत्र सर्वत्र बह रही है।

भारत जैसे पवित्र देश में आर्य जातियाँ पहुँची। देश विशेष पवित्र हुआ। दक्षिण भारत आज भी अपनी वैदिक संस्कृति से गौरवान्वित है। प्रत्येक क्षेत्र में हिन्दुत्व को सुविकसित करने की भूमिका का श्रेय भी दक्षिण भारत को अधिक प्राप्त है। दक्षिण भारत के राजवैभव के साथ पञ्चद्रविड़ ब्राह्मणों का उत्तर भारत में भी आधिपत्य हुआ था, स्वतन्त्र भारत ने सही इतिहास का परिचय दिया, तदनुसार इस व्याख्या के लेखक को किंवदन्तियों के परिपक्व आधार की उपलब्धि से सन्तोष हुआ अतएव कुछ आवश्यक उद्धरण उपस्थित किये जा रहे हैं, जो निम्न हैं।

१७४० तक मराठों का दोर्दण्ड प्रताप चतुर्दिक स्थापित हो गया था। इसी के परिणाम स्वरूप मुगल सम्राट एवं वजीर सफदर जंग ने मराठों की सहायता रुहेला पठानों एवं अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध प्राप्त की थी। इस सहायता के प्रतिफल में मराठों को फरवरी एवं अप्रैल १७५२ ई० में हुई दो सन्धियों के माध्यम से दोआब का विशाल क्षेत्र, पंजाब, सिंध पर चौथ लगाने का अधिकार मिला और पेशवा को अजमेर एवं आगरा की सूबेदारी प्राप्त हुई। रुहेलों को दबाने के लिए जयप्पा सिंधिया तथा मल्हार राव होल्कर कुमाउं की पहाड़ियों तक गये थे। उत्तर की समस्त प्रवृत्तियों के पार्श्व में मराठों का उद्देश्य राजनीतिक होने के साथ-साथ धार्मिक भी था जिसमें हिन्दुओं के पवित्र तीर्थ उनके अधिकार में आ जाय। अब्दाली के आक्रमण के विरुद्ध योजनाओं में ही रेनकोजना जी ने हिमालय के नीचले भागों पर १७५७ ई० में अधिकार स्थापित कर लिया। १७६० ई० में अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध पेशवा द्वारा भेजी गई सेना

पानीपत तक पहुँचते-पहुँचते २ लाख हो गई जिसमें २।३ असैनिक—लेखक, पंडित, दूकानदार सेवक इत्यादि थे। परन्तु १४ जनवरी १७६१ ई० को मराठों की अहमद शाह अब्दाली के हाथों करारी हार हो गई। इसी समय बहुत से बचे लोग पलायन कर गये। १७६१ ई० में माधव राव प्रथम पेशवा पद प्राप्त किया। इसने उत्तर भारत पर अधिकार स्थापित करने के लिए रामचन्द्र गणेश को नियुक्त किया। उसने पानीपत के युद्ध का बदला रुहेलों से ले लिया। उन्हें परास्त कर समस्त रुहेल खण्ड पर अधिकार कर पानीपत के युद्ध की पूर्व स्थिति मराठों की उत्तर भारत में स्थापित की। १७७२ ई० में महादजी सिंधिया ने भी रुहेलों से बदला लेने की योजना बनाई। उन्हें परास्त कर उनकी कब्रें खुदवाईं और उनके अस्थि पंजरों को बिखेरवा दिया। इस प्रकार पानीपत के पराजय का कलंक धुल गया। मराठों की खरतर असिधार स्रोतस्विनी में रुहेले पठान फेन बुदबुद की भाँति बह गये।

इस प्रकार उत्तर भारत में (रुहेल खण्ड) मराठों का अधिपत्य हो जाने पर उसकी व्यवस्था में आये मराठों को धार्मिक कृत्यों के सम्पन्न कराने के लिए पंडितों की आवश्यकता हुई। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए दक्षिणात्य कोंकणी ब्राह्मणों के तीन परिवार कुमायूँ अंचल में आकर बसे। विशेष विवरण के लिए देखिये—

(१) होल्कर शाहीच्या इतिहास प्रथम खण्ड लेखक वा० वी० ठाकुर

(२) मराठों का नवीन इतिहास द्वितीय खण्ड लेखक गो० स० सरदेसाई

उद्धरित उक्त ऐतिहासिक उद्धरण और परम्परा की जनश्रुति के अनुसार

कुमायूं की पहाड़ियों के कर्मसार, या कर्मसाक्ष्य के अपभ्रंश कमस्यार पट्टी के रमणीय दिव्य तीन स्थानों में, क्रमशः—

(१) गर्गगार्ग्यंघृतकौशिकमाण्डव्याथर्ववैशाम्पायन, पञ्चप्रवर गर्गगोत्रीय जोशी

(२) भारद्वाजाङ्गिरस बार्हस्पत्य त्रिप्रवर भारद्वाजगोत्रीय पन्त

(३) वसिष्ठशक्तिपराशर त्रिप्रवर पाराशरगोत्रीय पन्त

(१) श्री कुलदेव धवलनाग और कुलदेवी जगज्जननी श्री भद्रकाली पीठ के मध्यवर्त्ती धुरपटा ग्राम में, (२) तत्समीपग रेखाड़ी ग्राम में, और (३) तत्समीपग कोटघूड़ा ग्राम में स्थिर रूप से रहने लगे।

उक्त कोंकणस्थ दाक्षिणात्य तीनों ब्राह्मण परिवार वैदिक संस्कृति के परिपूर्ण उपासक थे श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठान रत होकर शास्त्र अध्यनाध्यापन से सारे जनपद में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। तथा तत्कालीन तत्रत्य चन्द्रराज्यवंशों पर अच्छा प्रभाव पड़ने से राजदरबार में सविशेष सम्मानित हो गये थे।

धीरे-धीरे उक्त तीनों ब्राह्मण वंशों का तत्रत्य जनता पर सम्मानादि विशेष प्रभाव पड़ने से धीरे-धीरे कुमायूँ के समग्र जनपद में यत्र तत्र उक्त ब्राह्मणत्रय सपरिवार सुविकसित होते हुए आज दिन तक अपनी वैदिक वंश परम्परा की धारा को वर्धमान कर रहे हैं।

धीरे-धीरे मेरी गर्गगोत्रीय वंश परम्परा की अपने मूल स्थान धुरपटा जंगल से कृषि उपयुक्त भूमि के ग्रामों में पनपती हुई, पैठाण-देवल, जुनायल भेटा आदि ग्रामों में स्वातन्त्र्येण बसती हुई तत्रत्य समादरणीय सभ्य-समाज पर इस वंश परम्परा का उत्तरोत्तर वर्धमान प्रभाव पड़ने लगा और जुनायल ग्राम की मूल ब्राह्मण जनता ने मेरे पूर्वजों को, घर, भूमि आचार्यत्व पद प्रदान से अपने ग्राम में स्थापित कर दिया। तारतम्य से यह समय आज से लगभग सवा दो सौ या कुछ अधिक वर्ष पूर्व का होता है।

वंश परम्परा की जनश्रुति के आधार से उक्त वंश परम्परा में मेरा स्थान संभवतः १२ वीं के आस-पास पीढ़ी हो रहा है।

निःसन्देह जुनायल ग्राम मेरे पूर्वजों को कल्पवृक्ष की तरह शुभ फलद रहा है। मेरे पितृ पितामह प्रपितामह तत्पूर्व की प्रत्येक पूर्व पुरुष ने अपने वैदुष्य से, अपनी तपस्यासे अपने पवित्र ब्राह्मणाचारविचार से अनेकों क्षेत्रों में जो प्रतिष्ठा प्राप्त की है उस दृष्टि से इस लेखक का कोई स्तर नहीं है तब भी फलित ज्योतिष जो मेरी पैतृक सम्पत्ति है, उसका यथोचित अध्ययन परम्परागत होने के बावजूद किन्हीं प्राक्तन संस्कारों से या पूर्वजों के शुभ आशीर्वाद से मुझे वंश परम्परा से ही प्राप्त हुआ है।

सुदूर कुमायूँ पर्वत के 'जुनायल' ग्राम से विशेषतः ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन के लिए स्वनामधन्य श्री १०८ पिता जी (स्व० श्री पं० हरिदत्त जोशी) ने सन् १९२६ में काशी भेजा। इस प्रकार मुझे काशी में आने का अवसर प्राप्त हुआ। तदनंतर स्वनामधन्य प्रातः स्मरणीय गुरुचरण तत्कालीन काशी के खगोलज्ञों में मूर्द्धन्य स्व० पं० बलदेव पाठक के वरदहस्त एवं उत्तरोत्तर अध्ययन में प्रगति से १९३७ ई०में गणित ज्योतिष-शास्त्राचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। अध्ययन समाप्ति के अनन्तर मैं महर्षि महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन् १९३८ में अनेक अन्तर्विरोधों के बावजूद महामनाजी ने मेरी नियुक्ति अध्यापन पदपर प्राच्य विद्या एवं धर्म विज्ञान संकाय में की। सन् १९७५ में मैंने विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त किया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ज्योतिषशास्त्र अध्यापन कार्य से अवकाश प्राप्त कर अपने आवास में अध्ययन-अध्यापन और ग्रंथ लेखन की दिनचर्या अभी तक चल रही है। लगभग ६० वर्ष के काशी के इस प्रकार के जीवन से ज्ञानार्जन के साथ-साथ अध्ययन-अध्यापन की मेरी प्रेरणायें उत्तरोत्तर वर्धमान हो रही हैं।

इस प्रकार उत्तराखण्ड के 'जुनायल' ग्राम में जन्म लेकर जुनायल केन्द्र से ठीक पूर्व-दक्षिण के क्षेत्र, श्रीकाशी क्षेत्र में यावज्जीवन तक शास्त्रसेवा में आज तक का जीवन

व्यतीत हुआ तथा अध्ययनाध्यापन का यह वेग विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त होने के अनन्तर अभी भी अधिकाधिक प्रचलित हो रहा है। सन्तोष है। शास्त्र सेवा रूप क्रियाशीलता से मन को इधर-उधर भटकने का अवसर ही नहीं मिलता है। यह बाबा विश्वनाथ की महती कृपा है और आशीर्वाद है।

लघुपाराशरी ग्रन्थ के विजयाव्याख्यान के प्रति श्लोक की व्याख्या लिखने में श्री १०८ पूज्य गुरु चरण स्व० श्री पं० रामयत्न ओझाजी प्रधानाध्यापक ज्योतिष विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्मृति पदे-पदे जाग्रत हुई है। यद्यपि आज उनका भौतिक शरीर तो नहीं है किन्तु जो मेरे मानस मंदिर में उनका भौतिक मूर्तरूप सुस्थिर है, जैसा उन्होंने पढ़ाया था तदनुसार का उपलब्ध ज्ञान भी इस व्याख्यान में निहित हुआ है।

लघुपाराशरी की विजया व्याख्यान लिखने में काशी के सभ्य पर्वतीय श्रेष्ठ, वैदिक ब्राह्मण परिवार के मूर्धन्य वैदिक विद्वान आचार्य श्री ढुण्ढिराज पाण्डेय 'पर्वतीय' ने जो हार्दिक सहयोग दिया, एतदर्थ उन्हें शुभाशीर्वाद है। साथ ही भूमिकालेखन में श्री गोविन्ददेव मिश्र, इतिहास प्राध्यापक डिग्री कालेज गङ्गापुर वाराणसी एवं अपने चिरञ्जीवी तृतीय पुत्र श्री दिनेश जोशी से सहयोग प्राप्त हुआ। एतदर्थ इन दोनों को हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ।

चि० अपने पुत्र तारकेशचन्द्र जोशी की इस ज्योतिषशास्त्राध्ययन की सविशेष रुचि और सहयोग के लिए उसे भी आशीर्वाद शब्द प्रयोग से प्रोत्साहित करते हुये आनन्दित हो रहा हूँ। आशा है वह ज्योतिष गणित एवं फलित शास्त्र का अच्छा विद्यार्थी होगा।

वार्धक्य अवस्था में भी बुद्धिस्थ चिरस्थायी यह ज्ञान, सच्छात्र शिष्य वर्ग के लाभाय होगा और आगे की परम्परा भी लाभान्वित होती रहेगी। शुभाशावादी होकर परम संतोष हो रहा है। पाठक वृन्द त्रुटियों पर अवश्य ध्यान देगा जिससे कि भविष्य के संस्करणों में विशेष स्वच्छता आती रहेगी। ब्राह्मणाः सन्तु निर्भया ''' इति।

संवत् २०४१ आषाढ़ शुक्ल द्वितीया रविवार 'रथयात्रा'
दिनांक १.७.८४
हरिहर्ष निकेतन १/२८
नगवा, नलगाँव वाराणसी २२१००५

केदारदत्त जोशी
अवकाशप्राप्त-प्रमुख प्राध्यापक
ज्योतिष विभाग
का. हि. वि. वि.

॥ श्रीः ॥

लघुपाराशरी

(हिन्दी व्याख्यान के साथ)

संज्ञाध्यायः

ग्रन्थकार का मङ्गलाचरण

सिद्धान्तमौपनिषदं शुद्धान्तं परमेष्ठिनः ।
शोणाधरं महः किञ्चिद्वीणाधरमुपास्महे ॥ १ ॥

गकारोज्ञानसम्पत्तो रेफस्तत्र प्रकाशकः ।
उकारः शिवतादात्म्यं गुरुरित्यभिधीयते ॥

गुरवे तस्मै नमः

-:o:-

विजया व्याख्या—अलौकिक चमत्कारिक भविष्य ज्ञानबोधक जैसा अनुपम ग्रन्थ है वैसा ही मंगलाचरण भी विलक्षण किया गया है ।

किसी भी सत्कार्य के प्रारम्भ में अदृष्ट शक्ति पुञ्ज का स्मरण करना मानव का साधु स्वभाव होता है । महर्षियों का विशेष तपश्चर्या से जो ज्ञान सञ्चित हुआ है उस ज्ञान को लिपिबद्ध कर एक ही स्थल पर लिखने की परम्परा भी लोकहितार्थ होती है । इस प्रकार अनन्त ज्ञानसागर से बुद्धिगत विषय को लोकहितार्थ सुरक्षित रखने के लिए लिपिबद्ध ग्रन्थ रचना का प्रादुर्भाव हुआ है । ज्ञान भण्डार को समृद्ध रखने के लिये ग्रन्थों की रचना आवश्यक होने से ऋषि महर्षि और आचार्यों से अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है । इस प्रकार ग्रन्थ रचना जैसे अत्यन्त कठिन दुस्साध्य कर्म की निर्विघ्नता सिद्धि के लिये भगवत्तत्व का स्मरण किये जाने से यहाँ पर आचार्य पराशरादि आचार्य गण भी ग्रन्थ की निर्विघ्न सम्पन्नता के लिये सर्वप्रथम इष्टदेव

अभीष्ट देव विशेष की स्तुति कर रहे हैं कि शास्त्र का सुन्दरतम आशय जो सर्वसाधारण की समझ में आ सकता है ।

वादी और प्रतिवादी अनेकों पण्डितों के परस्पर के विचार विनिमय से सुनिर्णीत सुन्दरतम तत्त्व या आशय जिसे "सिद्धान्त" कहा जाता है और जो उपनिषदों द्वारा ही ज्ञेय है, ऐसे ब्रह्मा का स्त्री रूप अरुण अधर अर्थात् गौर वर्णात्मक वीणाधारिणी किसी अनिर्वचनीय तेज विशेष शक्ति की अर्थात् वागधिष्ठात्री श्री सरस्वती देवी की उपासना से ग्रन्थारम्भ किया जा रहा है ।। १ ।।

अर्थात् हम सभी बुद्धि स्वरूपा भगवती सरस्वती से प्रार्थना करते हैं कि हमारा ग्रन्थ लिखने का सत्संकल्प निर्विघ्न सम्पन्न हो, माता आशीर्वाद दे ।। १ ।।

कथनीय वस्तु का निर्देश

> वयं पाराशरीं होरामनुसृत्य यथामति ।
> उडुदायप्रदीपाख्यं कुर्मो दैवविदां मुदे ।। २ ।।

विजया व्याख्या—ग्रन्थ विशेष में वस्तु विशेष का निर्देश किया जा रहा है ।

विद्वान् ज्योतिर्विदों की प्रसन्नता के लिए हम यथाबुद्धि विवेचना के साथ पराशर मुनि रचित होरा शास्त्र (जातक ज्योतिष शास्त्र) की नक्षत्रों की गतिविधि से समुत्पन्न किसी भी जातक के शुभाशुभ भविष्य के फलादेश का विवेचन कर रहे हैं ।

"यहाँ पर वयं शब्द प्रथमा के बहुवचन होने से हम सब लोग पराशर के जातक शास्त्र का यथामति के विचार के साथ अश्विनी आदिक रेवती अन्त तक के नक्षत्रों से समुत्पन्न आयुर्दाय अर्थात् आयु विचार फल का वर्णन कर रहे हैं" इस प्रकार के वयं बहुवचन के प्रयोग से इस सम्बन्ध के अनेक परिष्कृत व्याख्यानों का उत्तरोत्तर क्रम प्रचलित रहने का भी संकेत समझा जा सकता है—नहीं तो "अहं पाराशरीं होरामनुसृत्य यथामति उडुदायप्रदीपाख्यं कुर्वे दैवविदां मुदे" कथन से भी पूर्वोक्तविषय की वही स्पष्टता स्वतः सिद्ध हो जा सकती है । अथवा पहिले श्लोक में वादी प्रतिवादी से निर्णीत उपनिषद् विद्याओं से सम्बन्धित ब्रह्मा का अरुण रूप अधर (लालिमा का अधर) अर्थात् महान् अनिर्वचनीय तेज विशेष शक्ति रूपा श्री सरस्वती की हम सभी उपासना (स्मरण मात्र से भी उपासना होती है) करते हैं" इत्यादि से इस ग्रन्थ के निर्माण के समय अनेकों विद्वानों से शास्त्रार्थ द्वारा निष्पन्न सिद्धान्त के आधार से आचार्य पाराशर ने इस लघु पाराशरी ग्रन्थ की सुरचना की होगी तो वयं (हम) शब्द का प्रयोग करना ही समुचित है क्योंकि आगे के तीसरे पद्य में भी "विब्रूमहे" बहुवचन का ही प्रयोग हुआ है ।। २ ।।

फलादेश के लिए उपदेश

फलानि नक्षत्रदशाप्रकारेण विवृण्महे ।
दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता ॥ ३ ॥

विजया व्याख्या—अनेक संख्यात्मक अनेकों दशाओं में, विंशोत्तरी दशा का प्राधान्य कहा जा रहा है ।

जातकों के शुभ और अशुभ भविष्य जानने के लिए आचार्यों ने विंशोत्तरी महादशा (जिसका पूर्णमान १२० वर्ष होता है) को ही विशेष प्रश्रय या महत्त्व दिया है । दशाओं में विंशोत्तरी महादशा को शीर्ष स्थानीय कहते फलितज्ञों में अनेकों दशाओं का वर्णन होने के बावजूद—विंशोत्तरी दशा के (आचार्य वृन्दों के मत से अष्टोत्तरी प्रभृति महादशा १०८ वर्ष) का ही उल्लेख हुआ है । इस प्रकार इस ग्रन्थ रचयिता आचार्यों की बुद्धि में अष्टोत्तरी दशा का भी स्थान होते हुए भविष्य फल निर्णय में अष्टोत्तरी दशा की गणना की प्रबल उपेक्षा की गई है ।

यह भी कह सकते हैं कि आचार्य गण, जीव मात्र के स्तर में दीर्घायुष्य देखते हुए मानव मात्र की "दीर्घायु वर्ष प्रमाण १२० वर्ष की हो" इसी से सन्तोष करता है या आचार्य गण सर्व जनहिताय आयुष्य लाभाय आशीर्वाद का भाव द्योतित करता है ॥ ३ ॥

(१) विंशोत्तरी दशा का क्रम और गणित

अश्विनी आदिक २७ नक्षत्रों में रेवती नक्षत्र अन्तिम नक्षत्र होता है । किन्तु यहाँ पर इस ग्रन्थ के प्रणेता आचार्य पाराशर ने प्रथम नक्षत्र का प्रारम्भ स्थान कृतिका नक्षत्र कहते हुए विंशोत्तरी दशा साधन में २७ नक्षत्रों से सम्बन्धित ९ ग्रहों की दशाओं में प्रत्येक ग्रह की दशा के लिए नक्षत्र ग्रह $\frac{२७}{९}$ = तीन-तीन ३ नक्षत्रों में एक ही ग्रह की दशा का क्रम ठीक बताया है । इस प्रकार निम्न चक्र में किस नक्षत्र में किस ग्रह की दशा प्रारम्भ होगी सब स्पष्ट समझ में आवेगा । तथा जहाँ पर आचार्यों ने ग्रहों की क्रम गणना से जातक ग्रन्थों या समग्र फलित शास्त्र में जैसे सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु का क्रम स्वीकार किया है, किन्तु यहाँ पर आचार्य पराशर प्रभृति आचार्यों ने विंशोत्तरी दशा में ग्रहों का क्रम, सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, बृहस्पति, शनि, बुध, केतु और शुक्र ग्रह क्रम से दशा का क्रम माना है । ऐसा क्यों ? शङ्का का समाधान के लिए आर्ष प्रमाण या प्राचीन ऋषि वाक्य प्रमाण कह कर ही सन्तोष होना चाहिए ।

शत पथ ब्राह्मण के "कृतिका·······एता ह वै प्राच्ये दिशो न च्यवन्ते" से कृतिका नक्षत्र शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ रचना काल में प्राची बिन्दु पर क्रान्तिवृत्तविषुवद्वृत्त बिन्दुपर रहा होगा वहीं से मेषादि राशि गणना प्रारम्भ की जाती होगी ? ऐसा कहा जा सकता है । तथा, फलित ज्योतिष में ग्रहमण्डल के ७ ग्रहों में सूर्य और चन्द्रमा को

राजा कहते हुए भी यहाँ विंशोत्तरी दशा के लिए सबसे कम वर्ष सूर्य ग्रह के और सबसे अधिक वर्ष शुक्र ग्रह के लिए कहते हुए सभी ग्रहों के दशा वर्षों का योग १२० वर्ष होने से इसे विंशोत्तरी दशा कहा गया है। अर्थात् विंशति उत्तर (अधिक) एकसौ (शतम्) से विंशोत्तरशतम् की जगह दशा शब्द के साथ विंशोत्तरी = १२० वर्ष विंशोत्तरी दशा की पूर्णायु में स्वीकृत की गई है। इसी प्रकार अष्ट उत्तर (अधिक) शत से दशा सम्बन्ध से अष्टोत्तरी दशा = १०८ वर्ष की अष्टोत्तरी महादशा मानी गई है। आश्चर्य जनक चमत्कारिक भविष्य फल ज्ञान का माप दण्ड, पाराशरी ग्रन्थाशय, व्यक्त करने वाले आचार्यों में प्रमुख आचार्य पाराशरजी से यह अष्टोत्तरी दशा मान्य नहीं हुई है। यद्यपि विशाल भारत के हिन्दू ज्योतिष की मान्यता के कुछ प्रान्तों में अष्टोत्तरी दशाका ही विशेष स्थान आज भी मान्य है। चक्र देखिए—

दशा मान ज्ञान के लिए चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	बृहस्पति
योग १२० वर्ष	६	१०	७	१८	१६
तीन-तीन नक्षत्रों से दशाओं में ग्रहों का क्रम	कृतिका उत्तराफाल्गु उत्तराषाढ़ा	रोहिणी हस्त श्रवण	मृगशीर्ष चित्रा धनिष्ठा	आर्द्रा स्वाति शतभिषा	पुनर्वसु विशाखा पूर्वाभा.

ग्रह	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्रह
योग १२० वर्ष	१९	१७	७	२०	दशावर्ष
तीन-तीन नक्षत्रों से दशाओं में ग्रहों का क्रम	पुष्य अनुराधा उत्तराभाद्र	श्लेषा ज्येष्ठा रेवती	मघा मूल अश्विनी	पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढ़ा भरणी	नक्षत्र

चक्र से स्पष्ट है कि कृतिका उत्तराफाल्गुनी और उत्तराषाढ़ नक्षत्रों में जिनका जन्म हुआ है उनके जन्म समय से ही सूर्य की दशा प्रारम्भ होगी, एवं पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढ़ और भरणी नक्षत्रों के जिस किसी एक में जिस जातक का जन्म होगा उन्हें जन्म समय से ही शुक्र दशा का भोग फल भोगना होगा।

इस प्रकार जातक के जन्म नक्षत्र का ज्ञान कर जिस नक्षत्र में जन्म हुआ है उस नक्षत्र को कृतिकादि संख्या १ मान कर उसके आगे जन्म नक्षत्र की संख्या तक गिनती करते हुए यदि कृतिकादि से जन्म नक्षत्र संख्या ९ से अधिक हो तो उसमें ९ का भाग देने से १,२,३,४,५,,६,७,८,९ या० शेष संख्याओं में क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, राहु, बृहस्पति, शनि, बुध और केतु ग्रहों से विंशोत्तरी दशाओं का प्रारम्भ समझना चाहिए।

कृतकादि गणना से जिस ग्रह की दशा प्रारम्भ होगी उस ग्रह के दशा मान में प्राप्तदशा वर्षादि का मान क्या होना चाहिए उसे गणित से स्पष्ट करना चाहिए।

उदाहरणत:—जैसे हस्त नक्षत्र में किसी का जन्म हुआ हो तो कृतिका से हस्त नक्षत्र संख्या ११ होती है इसमें ९ से भाग देने पर शेष २ = आ-चं-मं-रा-बृ-श-बु-के, शु क्रम से जातक का जन्म "चन्द्र ग्रह की दशा में हुआ है ऐसा यह स्पष्ट होता है। चन्द्र ग्रह के विंशोत्तरी में दशा मान वर्ष १० वर्ष होने से जन्म समय में हस्त नक्षत्र कितना बीत चुका था उसे भयात और हस्त नक्षत्र का प्रारम्भ समय से हस्त नक्षत्र की समाप्ति काल तक का पूरा मान क्या है ? (जिसे भभोग कहते है) यह जानना आवश्यक है। चूँकि भयात = भ नक्षत्र, यात = बीता नक्षत्र का यात काल का मान या गत घटी मान··· घटी-पल-विपल अवयवों में है। तथैव भभोग = भ = नक्षत्र, भोग = सम्पूर्ण समय अर्थात् जन्म नक्षत्र के प्रारम्भ काल से जन्म नक्षत्र की समाप्ति काल तक कालात्मक (घट्यात्मक) मान में उस उस नक्षत्र के दशा में भयातवश पूर्णतया ६,१०, १५-५०-६०-६६ होने से अनुपात द्वारा भयात (या = भ शेष = भ = नक्षत्र, शेष = नक्षत्र मान कितना शेष है) इसे जन्मकाल की ग्रह दशा का भुक्त और भोग्यादिक वर्ष मान ज्ञान करते हुए भोग्य वर्षादिक मान से आगत प्रथम दशा वर्ष जन्मपत्री में लिखते हुए अग्रिम ग्रह दशाओं के पूरे पूरे वर्ष मान लिखने चाहिए।

घटयात्मक

भयात और भभोग बनाने की रीति-अपनी बुद्धि से जन्म कालीन इष्ट काल को समझ कर स्वयं समझनी चाहिए। जैसे चतुर्थी बुधवार को इष्टकाल = ३ घटी है, तो किसी तृतीया और मंगल तिथि वार में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का मान १५ घटी है तो नाक्षत्री षष्टि ६० घटिका के अहोरात्र में उक्त तिथि वार को ६०–१५ = ४५ घटी सूर्योदय तक हस्त नक्षत्र रहा और अग्रिम बुधवार चतुर्थी को हस्त नक्षत्र का मान १९ घटी होने से आरम्भ से अन्त तक ४५ + १९ = ६४ घटी हस्त नक्षत्र का पूरा मान जिसे भभोग कहते हैं वह होता है।

उदाहरण से यदि हस्त नक्षत्र का सम्पूर्ण मान ६४ घटी है और जन्म समय में व्यतीत हस्त नक्षत्र की घटिका = ४८ है। (यहाँ गणित सौकर्य के लिए पलादिक अवयव नहीं लिए गए हैं)।

तो अनुपात से यदि भभोग घटिकाओं में चन्द्रमा के पूरे १० वर्ष प्राप्त होते हैं तो इष्ट समय में भयात या भशेष घटिकाओं में चन्द्रमा के कितने वर्ष मिलेंगे त्रैराशिक गणित से, $\frac{\text{चन्द्रमा के वर्षमान} = १० \times \text{भयात घटिका } ४८, \text{ या भशेष घटी} = १६ \text{ में}}{\text{भभोग घटिका} = ६४}$।

अर्थात्

दशा भुक्तवर्ष = $\frac{१० \times ४८}{६४}$, या = दशाशेष वर्ष $\frac{१० \times १६}{६४}$

६४) ४८० (७ वर्ष
४४८
―――
३२ शेष को १२ से गुणा करने से ३८४ और ६४ से भाग देने से

६४) ३८४ (६ मास और ० दिन तक जातक ने चन्द्रमा दशा का मान गर्भ में
३८४
―――
×

बिताया, अत एव सम्पूर्ण दशा मान १० में गर्भगत दशा मान = ७ वर्ष ६ मास कम कर देने से जन्म समय से २ वर्ष ६ महीना तक जातक के जीवन में चन्द्रमा दशा का भोग होगा।

भशेष = १६ के द्वारा भी उक्त मान सरलता से $\frac{१० \times १६}{६४}$ =

६४) १६० (२ वर्ष
१२८
―――
३२ × १२

६४) ३८४ (६ महीना अर्थात् २ वर्ष ६ महीनों की अवधि तक जन्म समय से जातक के भविष्य ज्ञान के लिए चन्द्रमा दशा का फल कहा जावेगा। भयात घटी से भुक्त वर्ष = ७ वर्ष ६ महीना होता है पूरे चन्द्रदशा वर्ष १० में घटाने से १०।०।०–७।६।० = २ वर्ष ६ महीने ० शून्य दिन तक चन्द्रमा दशा का भोग्य वर्षादिमान स्पष्ट होता है।

जन्म समय में भोग्य या भुक्त दशा मान के साधन के अनेक प्रकारों में चन्द्र स्पष्ट से दशा मान ज्ञात करने का प्रकार सर्वोत्तम और सूक्ष्म होता है।

अतः, चन्द्र स्पष्ट करने की सरल और सूक्ष्म रीति बताई जा रही है। भभोग घटी में ४ का भाग देने से उस नक्षत्र का एक चरण या एक पाद का घट्यात्मक मान होता है। जैसे भभोग = ६४ में ४ का भाग देने से १६ अर्थात् १ चरण का काल = १६ घटी होता है। भयात = ४८ घटी होने से १६ + १६ + १६ = ४८ तीन चरण तुल्य बीता काल होता है। प्रत्येक नक्षत्र का अंशात्मक मान = १२ राशियों के भचक्र कला ३६० × ६० = २१६००, इक्कीस हजार ६ सौ कला २१६०० ÷ २७ = ८०० कला के तुल्य एक नक्षत्र का मान होता है। ८०० ÷ ६० = १३ अंश २० कला = १ नक्षत्र का मान। प्रकृत उदाहरण से उत्तराफाल्गुनी के तीन चरण + और हस्त के ४ चार चरण + चित्रा के २ चरण = १०°।० + १३।४० + ६।४० = ३०° = एक राशि। यहाँ पर यह

कन्या राशि का अंशात्मक पूर्णमान होगा। जिसे (१) ३।२०, (२) ६।४०, (३) १०।० (४) १३।२०, (५) १६।४०, (६) २०।०, (७) २३।२०, (८) २६।४०, (९) ३०।० लिखेंगे। अनुपात से एक चरण की कला = १६ × ६० = ९६० में एक चरण का अंशात्मक मान = ३°।२० = २०० कला तो भयात कला में या भभोग कला में क्या

$$\text{कला} = \frac{२०० \times \{(४८ \times ६०) = २८८०\}}{९६०} = २८८०$$

२८८० × २०० = ५७६०००

९६०) ५७६००० (६०० कला ÷ ६० = १० अंश कन्या राशि में चन्द्रमा होगा।
  ५७६०
  ———
  ×००

अर्थात् चन्द्र स्पष्ट = ५।१०°।०'।०" अथवा भभोग = ६४ − ४८ = १६ घटी होने से पूर्व की भाँति $\frac{२०० \times ९६०}{९६०}$ २०० कला = ३ तीन अंश २० बीस कला चन्द्रमा अभी हस्त के चौथे चरण में शेष हैं। अर्थात् हस्त को चौथा चरण तक चन्द्रमा का मान = १३°।२० में ३°।२०' कम करने से १०° तक हस्त का चन्द्रमा होने से कन्या राशिमें चन्द्र स्पष्ट ५।१०°।०।० पूर्व तुल्य होता है।

चन्द्र स्पष्ट से दशा वर्ष मान ज्ञान

यदि पूरे १३°।२० कला के चन्द्रमा में हस्त नक्षत्र के जन्म से चन्द्रमा की दशा वर्ष का पूर्ण मान=१० वर्ष है तो १०° गत और ३°।२०'कला शेष में चन्द्रमा की दशा मान अनुपात से

$$१३।२० \text{ की कला} = \frac{१० \times ६००}{८००}$$

= ६००० ÷ ८०० = ७ वर्ष ६ मास चन्द्रमा की भुक्तदशा मान है जिसे १० वर्ष में घटाने से १० − ७।६=२ वर्ष ६ महीना तक जातक के जन्म से चन्द्र दशा भोग रहेगा।

८००) ६००० (७ वर्ष
  ५६००
  ———
  ४००
  १२
  ———
  ४८००° (६ मास

$$\frac{१० \text{ वर्ष} \times \text{शेष} = २०० \text{ कला}}{८००}$$

२००० ÷ ८०० = २ वर्ष

$$= \frac{४०० \times १२}{८००} = ६ \text{ महीना}$$

२ वर्ष ६ महीना तक जातक में जन्म से चन्द्रमा की दशा चलेगी। इत्यादि यहाँ उदाहरण सौकर्य के लिए, केवल घटी या अंश मात्र से गणित दिखाया है जो बुद्धिमान् छात्र के लिए पर्याप्त है। घटी पलात्मक भयात भभोग या शेष से भी आगे ६० से गुणित विपल, विकला से चन्द्र स्पष्टीकरण द्वारा स्पष्ट चन्द्रमा से किसी भी ग्रह की दशा का भुक्त योग्य वर्ष मास दिन-घटी-पल-विपल तक का गणित सुगम और सूक्ष्म होता है। और ग्रन्थान्तरों के अध्ययन से भी उक्त विषय सभी के बुद्धिगत हो ही जाते हैं।

(१) इस प्रकार जन्मकुण्डली निर्माण में विंशोत्तरी दशा का साधन कर तब जातक की वर्तमान शुभाशुभ स्थिति का फलादेश करना चाहिए। सूर्य-चन्द्र-मंगल-राहु-बृहस्पति-शनि-बुध-केतु और शुक्र क्रम से दशाओं, अन्तरों, प्रत्यन्तरों, सूक्ष्म और प्राण तक की काल विवेचना आचार्यों द्वारा इस ग्रन्थ में जातक के शुभाशुभ भविष्य ज्ञान के लिए हुई।

(२) सात वारों में, जैसे सूर्य-चन्द्र-मङ्गल-बुध-गुरु-शुक्र और शनि का क्रम है वैसे यहाँ विंशोत्तरी दशा का क्रम नहीं देखा जा रहा है। दशा में उक्त वर्णित ग्रह क्रम क्यों रहा होगा तथा दशाओं में ७ वारों के अतिरिक्त राहु और केतु इन दो ग्रहों का भी सन्निवेश करते हुए दशा विचार के लिए ९ ग्रहों की ही आवश्यकता समझी गई थी? इत्यादि इस संशय के निराकरण की कोई ठोस युक्ति समझ में नहीं आती "आगम प्रमाण" कहते हुए ऋषियों का बुद्धिगम्य अनुभव ही यहाँ पर प्रमाण समझना चाहिए।

पूरी आयु में जिस प्रकार ६ वर्ष तक सूर्य की १० वर्ष चन्द्र ७ वर्ष मङ्गल एवं २० वर्ष की शुक्र की दशा बताई गई है, उसी गणित पद्धति से सामान्यतया एक ग्रह की दशा का जो शुभाशुभ फल आचार्यगण आगे बताने जा रहे हैं उस स्थूल अवधि में भी प्रत्येक ग्रह के दशा वर्षों के मान के प्रमाण में ही अनुपात से उस ग्रह के साथ अन्य ८ ग्रहों का समय ज्ञात किया गया है, जिसे अन्तर दशा कहते हैं। तात्पर्य हुआ कि यदि सूर्य ग्रह की दशा का मान ६ वर्ष है तो इसी ६ वर्ष में सूर्य चन्द्र-मङ्गल-राहु-बृहस्पति ...... की अन्तर दशा की अवधि गणित से ज्ञात करते हुए जातक की कुण्डली में अन्तर दशा भी लगानी चाहिए। जो इस गणित से निम्न भाँति समझिए।

(१) १२० वर्ष की दशा मान में सूर्य की दशा का मान यदि ६ वर्ष होता है तो केवल ६ वर्ष की ही सूर्य की दशा में सूर्य का समय क्या होगा अनुपात से जिसका ज्ञान सरल है। जैसे $\frac{\text{सूर्य के ६ वर्ष} \times \text{६ वर्ष के सूर्य में}}{\text{१२० वर्ष}}$ सूर्य की अन्तर दशा का मान

$\frac{३६}{१२०} = ०$ वर्ष, शेष $\frac{३६ \times १२}{१२०} = \frac{४३२}{१२०} = ३$ मास, $\frac{\text{शेष} \times ३०}{१२०} = \frac{७२ \times ३०}{१२०}$

= १८ दिन होते हैं। अर्थात् सूर्य ग्रह दशा वर्ष मास की दशा में सूर्य ग्रह का अन्तर भोग का समय ० वर्ष ३ मास और १८ दिन होता है। इसी प्रकार सूर्य दशा में चन्द्रमा की अन्तर दशा का मान $\frac{६ \times १०}{१२०} = \frac{६०}{१२०}$ = ० वर्ष ६ मास और शून्य दिन एवं सूर्य में मंगल की अन्तर दशा का मान $\frac{६ \times ७}{१२०}$ = ० वर्ष ४ महीना और ६ दिन इत्यादि होगा।

इसी प्रकार यदि शुक्र दशा में शुक्रादिक नौ ग्रहों का अन्तर दशा काल जानना हो तो, $\frac{२० \times २०}{१२०} = \frac{४००}{१२०}$ = ३ वर्ष ४ मास ० दिन होते हैं।

शुक्र में सूर्यान्तर = $\frac{६ \text{ वर्ष} \times २०}{१२०} = \frac{१२०}{१२०}$ = १ वर्ष

शुक्र में चन्द्रान्तर $\frac{२० \times १०}{१२०}$ = १ वर्ष ८ मास

,, ,, मंगल $\frac{२० \times ७}{१२०}$ = १ वर्ष २ मास

,, ,, राहु $\frac{२० \times १८}{१२०}$ = ३ वर्ष ० मास

,, ,, बृहस्पति $\frac{२० \times १६}{१२०}$ = २ वर्ष ८ मास

,, ,, शनि $\frac{२० \times १९}{१२०}$ = ३ वर्ष २ मास

,, ,, बुध $\frac{२० \times १७}{१२०}$ = २ वर्ष १० मास

,, ,, केतु $\frac{२० \times ७}{१२०}$ = १ वर्ष २ मास

सभी का योग शुक्र की विंशोत्तरीदशा २० वर्ष के तुल्य हो जाता है। इसी प्रकार सभी ग्रहों की दशाओं में सभी ग्रहों की अन्तर दशा काल ज्ञान का प्रकार उक्त भांति समझना चाहिए।

३—प्रत्यन्तर–जिस प्रकार अन्तर दशा का ज्ञान किया गया है उसी प्रकार किसी ग्रह की दशा में जिस किसी ग्रह की अन्तरदशा चल रही है मात्र उस अन्तर की छोटी काल अवधि में सूर्यादिक नव ग्रहों का प्रत्यन्तर काल को ज्ञात करना चाहिए।

१—दशा २—अन्तरदशा ३—प्रत्यंतरदशा में भी नवों ग्रहों में प्रत्येक ग्रह का लघु समय का जो काल है उसे प्रत्यन्तर अर्थात् अन्तरम्प्रति अन्तरम् अर्थात् प्रत्यन्तर काल कहा गया है।

जैसे सूर्य ग्रह की दशा जो ६ वर्ष की होती है और इस ६ वर्ष की लम्बी अवधि में सूर्य की अन्तरदशा जो पूर्व में ० शून्य वर्ष ३ मास एवं १८ दिन दिखा दी गई है इस लघु अवधि में भी सूर्यदशा में सूर्य के अन्तर में सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु……आदि के प्रत्यन्तरों का काल निर्णय करना चाहिए। यदि सूर्य की पूर्णदशा ६ वर्ष में सूर्य ग्रह की अन्तरदशा का मान ०।३।१८ होता है तो जब सूर्यान्तर काल ०।३।१८ हो तो इसमें सूर्य में सूर्य के अन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तर काल का ज्ञान त्रैराशिक गणित से बुद्धिमान् कर सकते हैं। जैसे—

यदि १२० वर्ष में सूर्य के ६ वर्ष तो सूर्य दशा में सूर्य की अन्तरदशा ० वर्ष ३ मास १८ दिन=१०८ दिन में क्या ? $= \frac{६ \times १०८}{१२०} = \frac{१०८}{२०} =$ ० मास ५ दिन २४ घटी तुल्य सूर्य के अन्तर में सूर्य ग्रह का प्रत्यन्तर का समय ५ दिन २४ घटी के तुल्य होता है।

इसी प्रकार सूर्य दशा में सूर्य के अन्तर में चन्द्रमा का अन्तर ज्ञान करना हैं।

$\frac{१०८ \text{ दिन} \times १० \text{ वर्ष}}{१२०}$ = मात्र ९ दिन का सूर्य में सूर्यान्तर में चंद्रमा का प्रत्यन्तर होता है।

इसी प्रकार सूर्य में सूर्य में मंगल का प्रत्यन्तर काल भी—

$\frac{१०८ \times ७}{१२०} = \frac{७५६}{१२०} =$ लब्धि ६ दिन, $\frac{३६ \times ६०}{१२०} =$ १८ घटी = ०।६।१८ तक सूर्यदशा में सूर्यान्तर में मंगल का प्रत्यन्तर होगा।

एवं यदि सूर्य दशा में सूर्यान्तर में राहु का प्रत्यन्तर काल जानना हो तो

$\frac{१०८ \text{ दिन} \times १८}{१२०} = \frac{१९४४}{१२०} =$ १६।१२ दिन घटिकादि राहु का प्रत्यन्तर एवं सर्वत्र समझिए।

पुनश्च उदाहरणतः शुक्र महादशा में शुक्र के अन्तर में शुक्रादिक केतु पर्यन्त अन्तर प्रत्यन्तरों का गणित दिखाया जा रहा है कि समय-समय पर यदि सारिणी आदि उपलब्ध न हो तो गणितज्ञ के लिए सिद्धान्त ज्ञान से सभी का मान सुलभ यत्र-तत्र सर्वत्र (१) दशा, (२) अन्तर दशा, (३) प्रत्यन्तरदशा (४) सूक्ष्म दशा और (५) प्राण दशाओं के वर्षादिक, मासादिक दिनादिक घटिकादिक और पलादिक मान ज्ञात हो जावेंगे। यद्यपि यहाँ पर गणितागत दशादि प्राण पर्यन्त ग्रहों का काल मान दिया जा रहा है। तथापि सौकर्य और समय पर सिद्धान्त से बुद्धिस्थ विंशोत्तरी दशादि प्रत्यन्तर का मात्र शुक्र ग्रह का गणित दिखाया जा रहा है। इसी आधार से अन्य ग्रहों का भी गणित समझना चाहिए।

१२० वर्ष की विंशोत्तरी मान से शुक्र दशा का पूर्णमान २० वर्ष होता है। शुक्र ग्रह की अन्तर दशाओं में सर्व प्रथम शुक्र ग्रह में शुक्र का अन्तर्दशा मान क्या होगा? अनुपात से

यदि १२० वर्ष में शुक्र ग्रह का दशा मान २० वर्ष का होता है तो मात्र २० वर्ष की शुक्र वर्ष प्रमाण में शुक्र ग्रह का समय क्या होगा ?

(१) तो शुक्र में शुक्र $= \frac{२० \times २०}{१२०} = \frac{४००}{१२०}$ वर्ष = ३ वर्ष ४ मास

(२) ,, में सूर्य $= \frac{२० \times ६}{१२०} = \frac{१२०}{१२०}$ वर्ष = १ वर्ष ० मास

(३) ,, ,, चन्द्रमा $= \frac{२० \times १०}{१२०} = \frac{२००}{१२०}$ वर्ष = १ वर्ष ८ मास

(४)(५) तो शुक्र में मंगल $= \frac{२० \times ७}{१२०} = \frac{१४०}{१२०}$ = १ वर्ष २ मास

इतना ही बराबर केतु का अन्तर शुक्र में।

(६) ,, ,, राहु $= \frac{२० \times १८}{१२०} = \frac{३६०}{१२०}$ = ३ वर्ष ० मास

(७) ,, ,, बृहस्पति $= \frac{२० \times १६}{१२०} = \frac{३२०}{१२०}$ = २ वर्ष ८ मास

(८) ,, ,, शनि $= \frac{२० \times १९}{१२०} = \frac{३८०}{१२०}$ = ३ वर्ष २ मास

(९) ,, ,, बुध $= \frac{२० \times १७}{१२०} = \frac{३४०}{१२०}$ = २ वर्ष १० मास

शु + सू + चं + भौ + रा + बृ + श + बु + के = २० वर्ष

सौकर्य के लिये शुक्र की दशा में सूर्यादिक ग्रहों की अन्तर दशा ज्ञान के लिए प्रत्येक ग्रह के वर्षों को द्विगुणित करने से वे महीने हो जाते हैं। जैसे शुक्र में सूर्य ६ × २ = १२ महीने, शुक्र में चन्द्र = १० × २ = २० महीने = १ वर्ष ८ मास, मं. = ७ × २ = १४ = १ वर्ष २ मास इत्यादि। जो प्रत्येक ग्रह दशा के द्विगुणित वर्ष संख्या के मासों के तुल्य स्पष्ट है, यथा अनुपात से यह गणित पहले दिखाया जा चुका है फिर भी इसकी एक और अच्छी युक्ति पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ दी जा रही है जो कि—

आगे इसी प्रकार शुक्र दशा में शुक्र के अन्तर में शुक्रादिक ग्रहों के प्रत्यन्तर ज्ञात करने चाहिए। अनुपात होगा कि यदि १२० वर्ष में शुक्र दशा प्रमाण २० वर्ष

होता है तो शुक्र दशा में शुक्र के अन्तर समय ३ वर्ष ४ मास में शुक्र की प्रत्यन्तर दशा की अवधि क्या होगी यही अनुपात सर्वत्र लागू होगा।

जिस प्रकार सूर्यादिक शुक्र पर्यन्त ग्रह दशा वर्षों की द्विगुणित संख्या तुल्य शुक्र ग्रह दशा में सभी ग्रहों में प्रत्येक की अन्तर दशा उक्त दिखाई गई है, उसी प्रकार की युक्ति चन्द्र ग्रह दशा में प्रत्येक ग्रह दशा वर्षों की संख्या के तुल्य मास संख्याएँ चन्द्र ग्रह दशा में प्रत्येक के अन्तर की मास संख्या हो जाती है। जैसे चन्द्र दशा वर्ष संख्या = १० वर्ष तो ० वर्ष १० मास ० दिन, चन्द्रमा में चन्द्रान्तर, एवं सूर्य वर्ष संख्या = ६ तो ० वर्ष ६ मास ० दिन, चन्द्रदशा में सूर्यान्तर ..... इसी प्रकार चन्द्रदशा में शुक्रान्तर के लिए शुक्रदशा वर्ष संख्या = २० के तुल्य मास संख्या २० के १ वर्ष ८ मासतक चन्द्रमा में शुक्र अन्तर समझते हुए जबानी सभी अन्तर स्पष्ट हो जाते हैं इत्यादि।

इस प्रकार सूर्य की दशा में अन्तर के प्रत्यन्तर के सूक्ष्म के घटी ५ पल २४ से तुल्य प्राणदशा के विपलों का योग हो जाता है, सुस्पष्ट है। उक्त अनुपात के आधार से सूर्यादिक राहु केतु सहित ९ ग्रहों का प्राण दशा समय ज्ञात करते हुए फलादेश करना चाहिए। भगवत्कृपा से सही भविष्य ज्ञान का मात्र यही एक सुगम उपाय है, जो सर्वसाधारण की सुविधा का है। इसे फलित ज्योतिष का यह ज्ञान एक परमौषधि है और चमत्कारपूर्ण भी कहना चाहिए।

उक्त गणित परम्परा का संरक्षण आवश्यक समझ कर उदाहरण के साथ त्रैराशिकानुपात द्वारा प्रत्येक ग्रह की दशा में राहु केतु सहित नौ ग्रहों के अन्तर-प्रत्यन्तर-सूक्ष्म और प्राणदशातक का गणित बताया गया है।

इसी आधार से उक्त ग्रहों की दशान्तरदशादि ज्ञान के लिए जो और एक सरल विधि है, उसे भी बताया जा रहा है। दशा वर्ष मान में १२० का भाग देने से उस ग्रह की ध्रुवा होती है। जैसे सूर्य दशा वर्ष ६ में १२० का भाग देने से

$$\frac{६}{१२०} = ०, \frac{६ \times १२}{१२०} = ०। \frac{६ \times १२ \times ३०}{१२०} = १८$$ अर्थात् ० वर्ष ० मास और

१८ दिन यह सूर्य की ध्रुवा होती है।

इसी प्रकार $\frac{१०}{१२०} = ०$ वर्ष, $\frac{१० \times १२}{१२०} = १$ मास और ० दिन ०।१।० चन्द्रमा

की एवं $\frac{२०}{१२०} = ०$ वर्ष $\frac{२० \times १२}{१२०} = ०।२।०$ यह शुक्र ग्रह की ध्रुवा होती है इसी

प्रकार सूर्यादिक ग्रहों की वर्षात्मक ध्रुवा निम्न समझिये।

सूर्य	ध्रुवा	=	$\frac{६}{१२०}$	=	०।०।१८
चन्द्र	की	=	$\frac{१०}{१२०}$	=	०।१।०
मंगल	,,	=	$\frac{७}{१२०}$	=	०।०।२१
राहु	,,	=	$\frac{१८}{१२०}$	=	०।१।२४
बृहस्पति	,,	=	$\frac{१६}{१२०}$	=	०।१।१८
शनि	,,	=	$\frac{१९}{१२०}$	=	०।१।२७
बुध	,,	=	$\frac{१७}{१२०}$	=	०।१।२१
केतु	,,	=	$\frac{७}{१२०}$	=	०।०।२१
शुक्र	,,	=	$\frac{२०}{१२०}$	=	०।२।०

उक्त ध्रुवाओं को देखकर समझने से गणित की एक नियत स्थिति समझ में आती है। जैसे वह सूर्य ध्रुवा + चन्द्र ध्रुवा ०।०।१८ + ०।१ ०।१।१८ = बृहस्पति ध्रुवा होती है और सू० वर्ष + चन्द्रवर्ष ६ + १० = बृहस्पति वर्ष हो रहे हैं। ग्रहों की इन ध्रुवाओं का महानुपयोग है जिसे समझाया जा रहा है—

यहाँ पर और ध्यान देने की बात है कि जैसे सूर्य की ध्रुवा = ०।०।१८ में चन्द्रमा की ध्रुवा = ०।१।० को जोड़ देने से ०।१।१८ यह बृहस्पति की ध्रुवा प्रत्यक्ष हो रही है तो इसी आधार से विंशोत्तरी में सूर्य वर्ष = ६ + चन्द्र वर्ष = १० = १६ वर्ष = बृहस्पतिदशा के वर्ष हो जाते हैं।

जैसे सूर्य के ६ वर्षों में वर्ष × ३ = ०।०।१८, चं १० वर्ष × ३ = ०।०।३० या = ०।१।० दशा मान का त्रिगुणित उस उस ग्रह की मासादि या दिनादि ध्रुवा सिद्ध हुई है उसी प्रकार १ वर्ष की ध्रुवा भी १ × ३ = ०।०।३ होने से जैसे—

सूर्य ध्रुवा + चन्द्रध्रुवा = बृहस्पति ध्रुवा और सूर्य वर्ष + चन्द्र वर्ष = गुरुदशा वर्ष सिद्ध हुआ है, तद्वत्

गुरु वर्ष = १६ + १ वर्ष = बुध वर्ष = १७

और गुरु ध्रुवा + १ वर्ष ध्रुवा = ०।१।१८ + ०।०।३ = ०।१।२१ = बुध ध्रुवा
तथैव बुध ध्रुवा + १ ,, ,, = ०।१।२१ + ०।०।३ = ०।१।२४ = राहु ध्रुवा
तथा राहु ध्रुवा + १ ,, ,, = ०।१।२४ + ०।०।३ = ०।१।२७ = शनि ध्रुवा
एवं शनि ध्रुवा + १ ,, ,, = ०।१।२७ + ०।०।३ = ०।२।० = शुक्र ध्रुवा
अथवा चन्द्रवर्ष × २ = शुक्र वर्ष और चन्द्र ध्रुवा × २ = ०।१।० × २ = ०।२।० शुक्रध्रुवा
और भी चन्द्रध्रुवा − ३ वर्ष ध्रुवा = ०।१।० − ०।०।९ = ०।०।२१ =
मं० और केतु ध्रुवा

मंगल या केतु ध्रुवा ०।०।२१ − ०।०।३ = ०।०।१८ = सूर्य ध्रुवा इत्यादि यह विषय या गणित अनेक प्रकारों से समझा जा सकता है।

ग्रह की दशा में उसी ग्रह की अन्तर दशा में उसी ग्रह की प्रत्यन्तर दशा में उसी ग्रह का सूक्ष्म समय ज्ञान के लिए

अथवा और भी प्रकारों से अन्तर प्रत्यन्तरादि समय ज्ञान के प्रकार

(१) ग्रह दशा वर्षों में १२० का भाग देने से उस ग्रह की अन्तर दशा में ध्रुवा होती है।

(२) ग्रह दशा और अन्तर दशा के वर्षों के गुणनफल में ४० का भाग देने से प्रत्यन्तर की दिनादिक ध्रुवा होती है।

(३) दशा अन्तर दशा और प्रत्यन्तर दशा के वर्ष के गुणनफल में ८० का भाग देने से घटिकादिक ध्रुवा सूक्ष्म की होती है।

(४) ग्रह की दशा अन्तर दशा प्रत्यन्तर दशा तथा सूक्ष्म दशा की संख्याओं में १६० का भाग देने से ग्रह का पलात्मक प्राण दशा का ध्रुवक मान होता है। सभी में ध्रुवक का ज्ञान कर पूर्वोक्त विधि से ग्रहों की दशा ग्रहों का अन्तर ग्रहों का प्रत्यन्तर ग्रहों का सूक्ष्म और ग्रहों का प्राणदशा तक का समय ज्ञातकर शुभाशुभ भविष्य विचार करना चाहिए।

$\frac{\text{२० × ३ वर्ष ४ महीना}}{\text{१२०}}$ सजातीय से ही अनुपात होना चाहिए इसलिए शुक्र के ३ वर्ष ४ मास = ४० मास समझकर ही अनुपात कीजिए।

शुक्र में शुक्र में शुक्र = $\frac{\text{४० × २०}}{\text{१२०}} = \frac{\text{४०}}{\text{६}}$ = ०।६।२०

में शुक्र में सूर्य = $\frac{\text{४० × ६}}{\text{१२०}}$ = = ०।२।०

,, ,, ,, ,, चन्द्र = $\frac{\text{४० × १०}}{\text{१२०}}$ = = ०।३।१०

,, ,, ,, ,, म = $\frac{\text{४०}\times\text{७}}{\text{१२०}}$ = = ०।२।१०

,, ,, ,, ,, रा = $\frac{\text{४०}\times\text{१८}}{\text{१२०}}$ = = ०।६।०

,, ,, ,, ,, बृ = $\frac{\text{४०}\times\text{१६}}{\text{१२०}}$ = ०।५।१०

,, ,, ,, ,, श = $\frac{\text{४०}\times\text{१९}}{\text{१२०}}$ = ०।६।१०

,, ,, ,, ,, बु = $\frac{\text{४०}\times\text{१७}}{\text{१२०}}$ = ०।५।२०

,, ,, ,, ,, के = $\frac{\text{४०}\times\text{७}}{\text{१२०}}$ = ०।२।१० इत्यादि सर्वत्र ।

(४) सूक्ष्मदशा की अवधि जानने का प्रकार

उक्त जिस प्रकार अन्तर और प्रत्यन्तरों का अवधि जानने की गणित से क्रिया दिखाई गई है, उसी पद्धति से सूक्ष्म दशाओं की भी काल मान की अवधि ज्ञात करनी चाहिए। उदाहरणतः सूर्य दशा मान ६ वर्ष, और सूर्य की अन्तरदशा का मान ० वर्ष ३ महीना और १८ दिन एवं सूर्य दशा में सूर्य अन्तर में सूर्य अन्तर में सूर्य की प्रत्यन्तर दशा का मान ० शून्य दिन ५ घटी और २४ पल ज्ञात किया गया है उसी प्रकार यहाँ भी अनुपात करना चाहिए कि यदि विंशोत्तरी दशा की पूर्ण अवधि १२० वर्ष में सूर्य के दशा मान वर्ष ६ होते हैं तो सूर्य दशा में सूर्य के अन्तर में सूर्य के प्रत्यन्तर काल ० दिन ५ घटी २४ पल में सूर्य में सूर्य अन्तर में सूर्य की सूक्ष्म दशा का समय कितना होगा।

यथा—

सूर्य में सूर्य में सूर्य में सूक्ष्म सूर्य का समय =

$\frac{\text{६}\times\text{५।२४}}{\text{१२०}} = \frac{\text{६}\times\text{३२४}}{\text{१२०}} = \frac{\text{३२४}}{\text{२०}}$ = वर्ष मास दिन ··· पल विपल होगा

० ० ० १६ १२

सूर्य में सूर्य में सूर्य में सूक्ष्म चन्द्र का समय =

$\frac{\text{६}\times\text{०।९।०}}{\text{१२०}} = \frac{\text{५४०}}{\text{२०}}$ = ,, ,, २७ ०

सूर्य में सूर्य में सूर्य में मंगल का सूक्ष्म समय =

$\frac{\text{६}\times\text{०।६।१८}}{\text{१२०}} = \frac{\text{३७८}}{\text{२०}}$ = ,, ,, १७ ५४

सूर्य में सूर्य में सूर्य में राहु का सूक्ष्म फल =

$\frac{६\times ०।१६।१२}{१२०}=\frac{९७२}{२०}=$,, ,, ४८ ३६

सूर्य में सूर्य में सूर्य में सूक्ष्म बृहस्पति का समय =

$६\times ०।१४।२४=\frac{८६४}{२०}=$,, ,, ४३ १२

सूर्य में सूर्य में सूर्य में सूक्ष्म शनि का समय =

$\frac{६\times ०।१७।६}{१२०}=\frac{१०२६}{२०}=$,, ,, ५१ १८

सूर्य में सूर्य में सूर्य में सूक्ष्म बुध का समय =

$\frac{६\times ०।१५।१८}{१२०}=\frac{९१८}{२०}=$,, ,, ४५ ५४

सूर्य में सूर्य में सूर्य में सूक्ष्म केतु का समय =

$\frac{६\times ०।६।१८}{१२०}=\frac{३७८}{२०}=$,, ,, १८ ५४

सूर्य में सूर्य में सूर्य में सूक्ष्म शुक्र का समय =

$\frac{६\times ०।१८।०}{१२०}=\frac{१०८०}{२०}=$,, ,, ५४

३२० २४०

इस प्रकार सूर्य दशा में सूर्य की अन्तर दशा में सूर्य के प्रत्यन्तर में सूर्य ग्रह से शुक्र ग्रह तक की सूक्ष्म दशाओं का घटिकादिक मानों का पूर्ण योग करने से

१६।१२ + २७।०।० + १७।५४ + ४८।३६ + ४३।१२ + ५१।१८ + ४५।५४ + १८।५४ + ५४।० सू. + चं. + मं. + रा. + बृ. + श. + बु. + के. + शु. = ३२०।२४० = ३२४ + ६० = दिन५ घटी२४ पल० सूर्य के प्रत्यन्तरकाल के तुल्य सुस्पष्ट होता है।

५—प्राणदशा की अवधि जानने का प्रकार भी पूर्ववत् समझिये। जैसे—१२० वर्ष में सूर्यदशा वर्ष = ६ वर्ष तो सूर्यदशा के सूर्यान्तर के प्रत्यन्तर के सूर्य प्रत्यन्तर के सूर्य प्राणदशा समय १६ पल १२ विपल में सूर्य की सूक्ष्म दशा का समय

$\frac{६\times १६।१२}{१२०}=\frac{९७२}{२०}=$ ४८।३६ सू. द. में सू. अं. में सू. प्र. में सू. सू. में सू. प्रा. स.

$\frac{६\times २७।०}{१२०}=\frac{१६२०}{२०}=$ ८१।१० ,, ,, ,, ,, ,, चं. प्रा.

$\frac{६\times १७।५४}{१२०}=\frac{१०७४}{२०}=$ ५६।४२ ,, ,, ,, ,, ,, मं. ,,

$\frac{६ \times ४८।३६}{१२०} = \frac{२९१६}{२०}$ १४५।४८ सू. द. में, सू. अं में सू. सू. में रा. का प्राण

$\frac{६ \times ४३।११}{१२०} = \frac{२५९२}{२०} = १२९।३६$,, ,, ,, ,, ,, बृ.

$\frac{६ \times ५११।१८}{१२०} = \frac{३०७८}{२०} = १५३।५४$,, ,, ,, ,, ,, श.

$\frac{६ \times ४५।५४}{१२०} = \frac{३७५४}{२०} = १३७।४२$,, ,, ,, ,, ,, बु.

$\frac{६ + १८।५४}{१२०} = \frac{११३४}{२०} = ५६।४२$,, ,, ,, ,, ,, के.

$\frac{६ \times ५४।०}{१२०} = \frac{४३२०}{२०} = १६२।०$,, ,, ,, ,, ,, शु.

४८।३६
८१।०
५६।४२
१४५।४८
१२९।३६
१५३।५४
१३७।४२
५६।४२
१६२।०

९६७।३००
३०० ÷ ६० = ५ + ९६७
९७२ ÷ ६०
१६।१२

कुल योग ० वर्ष ० मास ० घटी १६ पल १२ विपल के तुल्य स्पष्टतया प्रत्यक्ष उपलब्धि होती है।

इसी प्रकार सभी ग्रह दशामानों को पृथक्-पृथक् ३ से गुणा करने से प्रत्येक ग्रह की ध्रुवा सिद्ध हो जाती है। एक वर्ष में इस प्रकार सभी ग्रहों की ध्रुवा सिद्ध हो जाती है और इन ध्रुवाओं के आधार से सभी ग्रहों के अन्तर, प्रत्यन्तर, प्राण और सूक्ष्म दशाओं के वर्षादिक, मासादिक, दिनादिक, घटिकादिक और विघटिकादि (विपलादिक) मान सरलता से बुद्धि में तत्काल सामने आ जाते हैं। (अभ्यास से) जैसे ऊपर बता चुके हैं कि सूर्यदशा में सूर्यादिक ग्रहों का अन्तर प्रत्यन्तरादिक समय जानना है

तो सूर्यग्रह दशावर्षों का मान ६ वर्ष होने से सूर्य की ध्रुवा जो $\frac{६ \times १२ \times ३०}{१२०}$ = ०।०।१८ यह मासादिक सिद्ध हो चुकी है।

अतएव इस ध्रुवा के आधार से सूर्य में सूर्य की अन्तर दशा जानने के लिए सूर्यवर्ष × सूर्यध्रुवा का उपयोग करने से ६ × ०।०।१८ = ०।०।१०८ = ०।३।१८ यह सूर्य में सूर्य की अन्तरदशा का समय हो जाता है।

इसी प्रकार सूर्यध्रुवा × चन्द्रदशा वर्ष = ०।०।१८ × १० = ०।०।१८० = ० वर्ष ६ मास और शून्य दिन सूर्यदशा में चन्द्रान्तर काल हो जाता है।

तथैव	७ × ०।०।१८	=	०।४।६	=	सू० में मंगल
	१८ × ०।०।१८	=	०।१०।२४	=	,, ,, राहु
	१६ × ०।०।१८	=	०।९।१८	=	,, ,, बृ०
	१९ × ०।०।१८	=	०।११।१२	=	,, ,, श०
	१७ × ०।०।१८	=	०।१०।६	=	,, ,, बु०
	७ × ०।०।१८	=	०।४।६	=	,, ,, मं० = के०
	२० × ०।०।१८	=	१।०।०	=	,, ,, शुक्र की अन्तरदशा

काल हो जाता है।

इसी प्रकार यदि शुक्र ग्रह की महादशा में शुक्र ग्रह के साथ शेष ८ आठों ग्रहों का अन्तर समय जानना अभीष्ट हो तो सर्वप्रथम पूर्वोक्त प्रकार से शुक्र की ध्रुवा का ज्ञान आवश्यक होगा। अतएव २० × ३ = दिन ६० = मासादि ०।२।० यह शुक्र ग्रह की ध्रुवा सिद्ध होने से ध्रुवाओं के आधार पर भी—

शुक्रग्रह में	शुक्रग्रह	का	अन्तर	काल	=	२० × ०।२।।० = ३।४।०
,,	सू०	,,	,,	,,	=	६ × ०।२।० = १।०।०
,,	चं०	,,	,,	,,	=	१० × ०।२।० = १।८।०
,,	मं०	,,	,,	,,	=	७ × ०।२।० = १।२।० केतु भी
,,	रा०	,,	,,	,,	=	१८ × ०।२।० = ३।०।०
,,	बृ०	,,	,,	,,	=	१६ × ०।२।० = २।८।०
,,	श०	,,	,,	,,	=	१९ × ०।२।० = ३।२।०
,,	बु०	,,	,,	,,	=	१७ × ०।२।० = २।१०।०
,,	के०	,,	,,	,,	=	७ × ०।२।० = १।२।०

अतएव अन्तर, प्रत्यन्तर, प्राण और सूक्ष्म दशाओं के ध्रुवाओं के ज्ञानपूर्वक प्रत्येक ग्रह का सूक्ष्म दशा तक का समय सुखेन ज्ञात हो जाता है। तिसपर भी इस प्रसंग के सभी दशा, अन्तर, प्रत्यन्तर, दशा तक की सूची सर्वसौकर्याय यहाँ दी जा रही है।

प्रत्येक ग्रह की दशा मान में १२०वर्षों से—

जिस प्रकार तत्तद् ग्रह दशा वर्षों में १२० का भाग देने से तत्तद् ग्रह की ध्रुवा सिद्ध हुई है उसी प्रकार महादशा के वर्षों को ३ से गुणा करने से भी अन्तर्दशा की ध्रुवा हो जाती है। जैसे—सूर्य महादशा के वर्ष संख्या ६ को ३ से गुणा करने से ६ × ३ = १८ यह सूर्य की ध्रुवा दिनादिक होती है, जिसे वर्षादि क्रम से ०।०।१८ लिखा जाना चाहिए।

इसी प्रकार चन्द्र दशा वर्ष = १० × ३ = ३० दिन = ०।१।०

इसी प्रकार मंगल दशा वर्ष = ७ × ३ = २१ = ० वर्ष ० दिन २१ घं० = ०।०।२१

इसी प्रकार राहु............१८ × ३ = ५४ = ० वर्ष १ मास २४ दिन = ०।१।२४

एवं सर्वत्र समझना चाहिए।

ऐसा क्यों ?

तो यहाँ भी बुद्धिगत पूर्व अनुपात का उपयोग करना चाहिए। जैसे—यदि विंशोत्तरी दशा में सभी ग्रहों की दशा वर्षों का कथित मान उपलब्ध होता है तो १ वर्ष की अवधि में सभी का अनुपातीय अंक गणित से गणित का क्या होगा ?

$$\frac{\text{ग्रहदशा की वर्ष संख्या} \times १ \text{ वर्ष}}{१२०}$$ = यह वर्षादिक लघु मान होता है। इस प्रकार

१ वर्ष सम्बन्धी सौरात्मक दिन संख्या का मान १ वर्ष की जगह स्थापित करने से

$$\frac{\text{ग्रह दशा वर्ष} \times ३६०}{१२०}$$ = ग्रह दशा वर्ष × ३ यह १ वर्ष की ध्रुवा सिद्ध होती है।

अतएव जिस किसी ग्रह का ध्रुवक ज्ञात करना है उस ग्रह की वर्ष संख्या को ३ से गुणा कर देने से उस ग्रह की ध्रुवा हो जाती है।

शुक्र ग्रह की दशा वर्ष = २० को ३ से गुणा करने से २० × ३ = ६० दिनादिक मान को वर्षादिक क्रम से लिखने से शुक्र की ध्रुवा = ०।२।०

६ × ३	=	सूर्य........	= ०।०।१८
१० × ३	=	चन्द्र........	= ०।१।०
७ × ३	=	मं० और के	= ०।०।२१

इत्यादि पूर्व प्रदर्शित के तुल्य ही होता है इसे समझिए।

उदाहरण द्वारा सौकर्य के लिए और स्पष्टता

१. दशा—सूर्यदशा वर्ष मान = ६ वर्ष, चन्द्र दशा वर्ष मान = १०, मं = ७, रा = १६, इत्यादि।

२. अन्तर—सूर्य में सूर्य दशा की अन्तर दशा का मान = सूर्य ध्रुवा = ०।०।१८ = ०।०।१८ को ६ से गुणा करने से ०।३।१८, सूर्य में सूर्य तथा चन्द्रदशा मान = १० × १८ = १८० = ०।६।० = सूर्य में चन्द्र एवं ०।०।१८ × ७ = ०।४।६ = सूर्य में मंगल इत्यादि।

इसी प्रकार चन्द्रदशा वर्ष = १० ÷ १२० = चन्द्र ध्रु.वा. $\frac{1}{12}$ वर्ष अथवा = ०।१।०
चन्द्र ध्रु.वा × चन्द्र वर्ष = ०।१।० × १० = ०।१०।० } इत्यादि।
चन्द्र ध्रु.वा × मंगल = ०।१।० × ७ = ०।७।०····

३. प्रत्यन्तर—जैसे सूर्य महादशा वर्ष ६ है। ऊपर में सूर्य में सूर्य का अन्तर काल १०८ दिन या ३ महीने १८ दिन कह आये हैं। इसमें सूर्य की महादशा वर्ष ६ के आधे = ३ से गुणा कर देने से, १०८ × ३ = ३२४ होने से इसमें ६० का भाग देने से ३२४ ÷ ६० = ५ दिन २४ घटी तक सूर्य दशा में सूर्य के अन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तर समय हुआ।

सूर्य में चन्द्रमा की अन्तर्दशा मान = ६ महीना = १८० दिनों को ३ से गुणित करने से ५४० घटी में ६० का भाग देने से ९ दिन = सूर्य दशा के सूर्यान्तर में चन्द्रमा का प्रत्यन्तर होता है।

में मंगल का अन्तर समय = ४ मास ६ दिन = १२६ को ३ से गुणा करने से ३७८ में ६० का भाग देने से सू० में सू० में मंगल = ६ दिन १८ घटी होगा।

इसी प्रकार चन्द्रमा वर्ष संख्या = १०, चं० में चन्द्रमा = ०।१०।१० = ३०० दिन $\frac{\text{चन्द्र दशा वर्ष}}{२}$ = ५ से गुणा करने से ३०० × ५ = १५०० में ६० का भाग देने से ०।०।२५ चन्द्र महादशा में चन्द्रान्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तर होता है।

तथा चन्द्रमा में मंगल = ०।७।० = २१० × ५ = १०५० ÷ ६० = ०।०।१७।३०

तथा चन्द्रमा में राहु = १।६।० = १८×३० = ५४० × ५ = २७०० ÷ ६० ०।०।४५ = ०।१।१५। इसी प्रकार सर्वत्र समझिए।

४. सूक्ष्मदशा का उदाहरण—सूर्य में सूर्य के अन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तर काल दिन ५ घटी २४ घटी है एक जातीय करने से ३२४ पल होते हैं। इसे $\frac{\text{सूर्य महादशा} = ६}{२}$ = इसे गुणित करने से ३२४ × ३ = ९७२ में ६० का भाग देने से ०।०।०।१६।१२ घटी पलात्मक समय सू० सू० सू० सू० प्राण होता है। चन्द्रमा का प्रत्यन्तर ०।०।९।० = ५४० पल में ३ से गुणा करने से १७२० में ६० का भाग देने से ०।०।०।२७।

५. प्राण—सूर्य दशा में सूर्य अन्तर में सूर्य प्रत्यन्तर में सूर्य का प्राण दशा समय = १६ घटी १२ पल = ९७२ पल को $\frac{\text{सूर्यदशा वर्ष}}{२}$ = ३ से गुणा किया २९१६ हुआ इसमें ६० का भाग देने से ४८ पल और ३६ विपल होते हैं। यही सूर्यदशा के सूर्य अन्तर के सूर्य प्रत्यन्तर के सूर्य सूक्ष्म में सूर्य की प्राणदशा सिद्ध होती है।

॥ श्रीः ॥

उदाहरण द्वारा—यह एक जन्मपत्रिका दी जा रही है। समग्र ग्रन्थ में दशाविचार उपयोग के लिए निम्न जन्मपत्रिका में सभी विषय स्पष्टता के साथ तथा स्पष्ट चन्द्रमा से दशा ज्ञान गणित भी दिखाया जा रहा है।

श्री गणेशाय नमः

शुभे संवत्सरे १९६६ शके १८३१ चैत्रशुक्ल सप्तम्यां २१।११ उपरि अष्टम्यां रविवासरे मृगे ११।४५ उपरि रौद्रर्क्षे, सौभाग्य योगे, सामयिके भद्रा करणे श्री सूर्योदयादिष्ट समये ४८।३९, (ता० २८ मार्च १९०९ रात्री १२·४५) धनुर्द्धर लग्ने जन्म-शुभम् ।

ग्रहाः

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	रा.	के.	ल.
११	२	८	१०	४	११	११	१	७	८
१५	१४	२७	२८	१४	९	२१	२८	२८	२१
५	३१	२६	१४	१५	८	२२	१३	१३	०
४५	६	१२	२४	३५	४५	३	१५	१५	०

जन्माङ्गम्

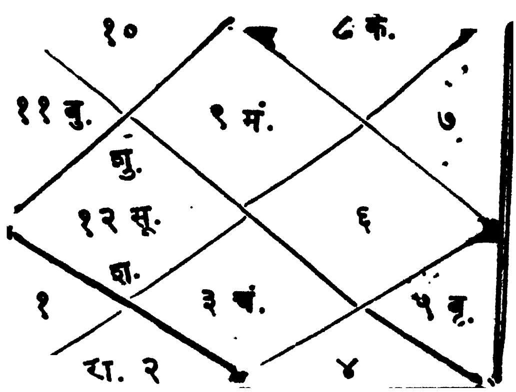

चन्द्राङ्गम्

स्पष्ट चन्द्रमा से दशा ज्ञान का गणित।

उक्त कुण्डली में राश्यादिक स्पष्ट चन्द्रमा २।१४।३१।६ दिया है। अंशादिक गणना से अं० ६°।४० कला तक मृगशीर्ष नक्षत्र के २ चरण बीत जाने से ६ अंश ४० कला के आगे १ अंश कला तक में आर्द्रा नक्षत्र का मान मिथुन राशि में होता है। इसलिए अंश २०° में उक्त स्पष्ट चन्द्र अंशों को कम करने से २०°।०'।०'' – १४।३१।६= अंश ५ कला २८ और विकला ५४ शेष अंश रहते हैं।

कृतिकादि नक्षत्र गणनया आर्द्रा नक्षत्र संख्या ४ होने से राहुग्रह की दशा में जन्म होता है। प्रत्येक नक्षत्र के चारों चरणों की अंश संख्या = १३°।२० तथा, कला संख्या = ८०० होती है। वर्तमान चन्द्रमा की अंश संख्या १४।३१।६ मे मृगशीर्षार्ध अंश संख्या कम कर देने से ७।५१।६ अंशादि आर्द्रा के पूर्णांश १३°।२० में भुक्त हो जाने से १३°।२०' – ७°।५१'।६'' = ५।२८।५४ पूर्व तुल्य राहुदशा का भोग्य वर्षादि मान होगा।

राहु दशा के वर्ष मान १८ से गुणा कर और ८०० से भाग देने से राहु दशा का भोग्य वर्षादिमान होगा। भास्कराचार्य की लीलावती में त्रैराशिकानुपात प्रसिद्ध गणित से "प्रमाणमिच्छा च समानजाती आद्यन्तयोस्तत्फलमन्यजातिः मध्ये तदिच्छा हताद्यहृत" से $\frac{\text{राहु दशा मान} = १८ \text{ वर्ष} \times ५।२८।५४}{१ \text{ नक्षत्र की चन्द्रकला } ८००}$ = राहु दशा भोग्य वर्षादि मान होगा।

५।२८।५४ की कला १९७३४ सजातीय से अनुपात करना चाहिए $\frac{१८ \times १९७३४}{८००}$

५।२८।५४ = ३२८ × ६० + ५४ = १९७३४ होने में हर संख्या ८०० को भी एक और ६० से गुणा करने से उक्त स्वरूप $\frac{१८ \times १९७३४}{८०० \times ६०} = \frac{३५५२१२}{४८०००}$ = लब्धि ७ वर्ष। शेष १९२१२ × १२ से गुणा कर मास बनाते हुए और ४८००० भाग देकर लब्धि = ४ महीना। शेष ३८५४४ को दिन बनाने के लिए ३० से गुणा कर हर से भाग देने पर ११५६३२० ÷ ४८००० ११५६३२० = २४ दिन होते हैं। जन्म समय से ७ वर्ष ४ महीने और २४ दिन तक राहु दशा रहेगी।

अथवा आर्द्रा नक्षत्र का भुक्त मान ७।५१।६ से उक्त भाँति अनुपात कर $\frac{\text{राहु दशा वर्ष} - १८ \times ७।५१।६}{८००}$ पूर्ववत् गणित करने से १० वर्ष ७ महीने और ६ दिन तक राहु दशा का भुक्त मान गर्भस्थ शिशु की अवस्था में बीत चुका है। भुक्त + भोग्य = समग्र मान। = १०।७।६ + ७।४।२४ = १८ वर्ष होते हैं। यह मान इष्ट समय में नक्षत्र की भयात भभोग घटिकाओं से भी स्पष्ट आ जाता है। भयातादि से अनुपात $\frac{\text{ग्रहदशा वर्ष संख्या} \times \text{भयात घटी में या भभोग घटी में}}{\text{भभोग घटी}}$ = ग्रहदशा के भुक्त वर्ष और ग्रह दशा के भोग्य वर्षादि होंगे, दोनों का योग = ग्रह दशा वर्षमान सुस्पष्ट है।

दशावर्षादि मान ज्ञात कर निम्न भाँति दशा अन्तर्दशादि चक्र बनाते हुए उन-उन ग्रहों की दशा अन्तरदशा प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्म दशा और प्राण दशाओं का समय समझकर शुभाशुभ फल विचार करना चाहिए।

विंशोत्तरीदशा चक्रम्

	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	ग्रहाः
	७	१६	१९	१७	७	२०	६	१०	७	वर्षाणि
	४									मासाः
	२४									दिनानि
संवत्	१९६६	१९७४	१९९०	२००९	२०२६	२०३३	२०५३	२०५९	२०६९	२०७६
सूर्य का	११	४	४	४	४	४	४	४	४	४
अंश का	१५	९	९	९	९	९	९	९	९	९
कला	५									५
विकला	४५									४५
सन	१९०९	१९१६	१९३२	१९५१	१९६८	१९७५	१९९५	२००१	२०११	२०१८
अंग्रे.मास	३	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ता०	२८	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२

शुक्रेऽन्तराणि

	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	ग्रहाः
	३	१	१	१	३	२	३	२	१	
	४	०	८	२	०	८	२	१०	२	
	०	०	०	०	०	०	०	०	०	
सन	१९७५	१९७८	१९७९	१९८१	१९८२	१९८५	१९८८	१९९१	१९९४	१९९५
अंग्रे. मास	८	१२	१२	८	१०	१०	६	८	६	८
ता०	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२

सुविधा के लिए सूर्यादि ग्रहों की अन्तर-प्रत्यन्तर सारिणी

सूर्य की दशा में सूर्यादि ९ ग्रहों की अन्तर्दशा—

ध्रु.	ग्र.	सू.	चं.	मं.	रा.	जी.	श.	बु.	के.	शु.
०	व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
०	मा.	३	६	४	१०	९	११	१०	४	०
१८	दि.	१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०

चन्द्र की दशा में चन्द्र आदि ९ ग्रहों की अन्तर्दशा—

ध्रुव	ग्र.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
०	वा.	०	०	१	१	१	१	०	१	०
१	मा.	१०	७	६	४	७	५	७	८	६
०		०	०	०	०	०	०	०	०	०

एवं मङ्गल की दशा में मङ्गलादि ग्रहों की अन्तर्दशा—

ध्रुव	ग्र.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
०	व.	०	१	०	१	०	०	१	०	०
०	मा.	४	०	११	१	११	४	२	४	७
२१	दि.	२७	१८	६	९	२,	२७	०	६	०

॥ राहु की दशा में राहु आदि की अन्तर्दशा ॥

ध्रुव	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं
०	२	२	२	२	१	३	०	१	१
१	८	४	१०	६	०	०	१०	६	०
२४	१२	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८

॥ बृहस्पति की दशा में अन्तर्दशा ॥

ध्रुव	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा
०	२	२	२	०	२	०	१	०	२
१	१	६	३	११	८	९	४	११	४
१८	१८	१२	६	६	०	१८	०	६	२४

॥ शनि की दशा में अन्तर्दशा ॥

ध्रुव	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ
०	३	२	१	३	०	१	१	२	२
१	०	८	१	२	११	७	१	१०	६
२७	३	९	९	०	१२	०	९	६	१२

॥ बुध की दशा में अन्तर्दशा ॥

ध्रुव	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श
०	२	०	२	०	१	०	२	२	२
१	४	११	१०	१०	५	११	६	३	८
२१	२७	२७	०	६	०	२७	१८	६	९

॥ केतु की दशा में अन्तर्दशा ॥

ध्रुव	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु
०	०	१	०	०	०	१	०	१	०
०	४	२	४	७	४	०	११	१	११
२१	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२७

॥ शुक्र को दशा में अन्तर्दशा ॥

ध्रुव	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के
०	३	१	१	१	३	२	३	२	१
२	४	०	८	२	०	८	२	१०	२
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

॥ सूर्य की महा दशा में सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा ॥

ध्रुव	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	५	९	६	१६	१४	१७	१५	६	१८
५४	२४	०	१८	१२	२४	६	१८	१८	०

॥ चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा ॥

ध्रुव	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	र
०	०	०	०	०	०	०	०	१	०
१	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	६
०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०

॥ मङ्गल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
१	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	६	१०
-	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	१८	३०

॥ राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	रा	बृ	श	बु	के	शु	र	चं	मं
०	१	१	१	१	०	१	०	०	०
२	१८	१३	२१	१५	१८	२४	१६	२७	१८
४२	३६	१२	१८	५४	५४	०	१२	०	५४

॥ गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर ॥

घ ।	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा
०	१	१	१	०	१	०	०	०	१
२	८	१५	१०	१६	१८	१४	२४	१६	१३
२४	२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२

॥ शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर ॥

घ	श	बु	के	शु	सू	चं	म	रा	बृ
०	१	१	०	१	०	०	०	१	१
२	२४	१८	१९	२७	१७	२८	१९	२१	१५
५१	९	२७	५७	०	६	३०	५७	१८	३६

॥ बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर ॥

घ	बु	के	शु	र	चं	मं	रा	बृ	श
०	१	०	१	०	०	०	१	१	१
२	१३	१७	२१	१५	२५	१७	१५	१०	१८
३३	२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४८	२७

॥ केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर ॥

घ	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
१	७	२१	६	१०	७	१८	१६	१९	१७
३	२१	०	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१

॥ शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर दशा ॥

घ	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के
०	२	०	१	०	१	१	१	१	०
३	०	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

॥ चन्द्रमा की दशा चन्द्रमा की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

घ	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू
०	०	०	१	१	१	१	०	१	०
२	२५	१७	१५	१०	१७	१२	१७	२०	१५
३०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०

॥ मङ्गल की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

घ	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं
०	०	१	०	१	०	०	१	०	०
१	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	१७
४५	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	३०

॥ राहु की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

घ	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	च	मं
०	२	२	२	२	१	३	०	१	१
४	२१	१२	२५	१६	१	०	२७	१५	१
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०

॥ बृहस्पति की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

घ	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा
०	२	२	२	०	२	०	१	०	२
४	४	१६	८	२८	२०	२४	१०	२८	१२
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

॥ शनि की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

घ	श	बु	के	शु	सू	च	मं	रा	बृ
०	३	२	१	३	०	१	१	२	२
४	०	२०	३	५	२८	१७	३	२५	१६
४५	१५	४५	१५	०	३०	३०	१५	३०	०

॥ बुध की अन्तदशा में प्रत्यन्तर ॥

घ	बु	के	शु	र	चं	मं	रा	बृ	श
०	२	०	२	०	१	०	२	२	२
४	१२	२९	२५	२५	१२	२९	१६	८	२०
१५	१५	४५	०	३०	३०	४५	३०	०	४५

॥ केतु की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

घ	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु
०	०	१	०	०	०	१	०	१	०
१	१२	५	१०	१७	१२	१	२८	३	२९
४५	१५	०	३०	३०	१५	३०	०	१५	४५

॥ शुक्र की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के
०	३	१	१	१	३	२	३	२	१
५	१०	०	२०	५	०	२०	५	२५	५
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

॥ सूर्य की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु
०	०	०	०	०	०	०	०	०	१
१	९	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०
३०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०

॥ मङ्गल की दशा में मङ्गल की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
१	८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२
१३	३४	३	३६	१६	४६	३४	३०	२१	१५
३०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

॥ राहु की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं
०	१	१	१	१	०	२	०	१	०
३	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२
९	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३

॥ गुरु की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा
०	१	१	१	०	१	०	०	०	१
२	१४	२३	१७	१६	२६	१६	२८	१९	२०
४८	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४

॥ शनि की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ
०	२	१	०	२	०	१	०	१	१
३	३	२६	२३	६	१९	३	२३	२९	२३
१६	१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२
३०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०

।। बुध की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ।।

ग्रु	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श
०	१	०	१	०	०	०	१	१	१
२	२०	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६
५८	३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

मङ्गल की दशा—केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

ग्रु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
१	८	२३	७	१२	८	२२	१९	२३	२०
३	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	४९
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

मङ्गल की दशा—शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर

ग्रु	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के
०	२	०	१	०	२	१	२	१	०
३	१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०

।। मङ्गल की दशा सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर ।।

ग्रु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
१	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१
३	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०

।। मङ्गल की दशा चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर ।।

ग्रु	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू
०	०	०	१	०	१	०	०	१	०
१	१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०
४५	३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०

।। राहु की महादशा और राहुही की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ।।

ग्रु	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं
०	४	४	५	४	१	५	१	२	१
८	२५	९	३	१७	२६	१२	१८	२१	२६
६	४८	३६	५४	४२	४२	०	३६	०	४२

॥ राहु की दशा बृहस्पति के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ.	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा
०	३	४	४	१	४	१	२	१	४
७	२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०	९
१२	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	३६

॥ रा. द. शनि के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ.	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ
०	५	४	१	५	१	२	१	५	४
८	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९	३	१६
३३	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४८

॥ रा. द. बुध के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ.	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श
०	४	१	५	१	२	१	४	४	४
७	१०	२३	३	१५	१६	२३	१७	२	२५
३९	३	३३	०	५४	३०	३३	४२	२४	२१

॥ रा. द. केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ.	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु
०	०	२	०	१	०	१	१	१	१
३	२२	३	१८	१	२२	२६	२०	२९	२३
९	३	०	५४	३०	३	४२	२४	५१	३३

॥ राहु दशा—शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ.	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के
४	६	१	३	२	५	४	५	५	२
९	०	२४	०	३	१२	२४	२१	३	३

॥ राहु दशा—रवि की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

घ.	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु
०	०	०	०	१	१	१	१	०	१
२	१६	२७	१८	१८	१३	२१	१५	१८	२४
४२	१२	०	५४	३६	१२	१८	५४	५४	०

॥ राहु की दशा - चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	र
०	१	१	२	२	२	२	१	३	०
४	१५	१	२१	१२	२५	१६	१	०	२७
३०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०

॥ राहु की दशा—मङ्गल की अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

घ०	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं
०	०	१	१	१	१	०	२	०	१
३	२२	२६	२०	२९	२३	२२	३	८	१
९	३	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०

॥ बृहस्पति की दशा—बृहस्पति के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ०	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा
०	३	४	३	१	४	१	२	१	३
६	१२	१	१८	१४	८	८	४	१४	२५
२४	२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२

॥ बृ. द. शनि के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ०	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ
०	४	४	१	५	१	२	१	४	४
७	२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६	१
३६	२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४८	३६

॥ गु. द. बुध के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ०	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श
०	३	१	४	१	२	१	४	३	४
६	२५	१७	१६	१०	८	१७	२	१८	९
४८	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२

॥ गु. द. केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ०	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु
०	०	१	०	०	०	१	१	१	१
२	१९	२६	१६	२८	१९	२०	१४	२३	१७
४८	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	३६

॥ गु. द शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घु	शु	सू.	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के
०	५	१	२	१	४	४	५	४	१
८	१०	१८	२०	२६	२४	८	२	१६	२६

॥ गु. द. सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु
०	०	०	०	१	१	१	१	०	१
२	१४	२४	१६	१३	८	१५	१०	१[illegible]	१८
२४	२४	०	४८	१२	२४	३६	४८	४८	०

॥ गु. द. चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घु	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	आ
०	१	०	२	२	२	२	०	२	०
४	१०	२८	१२	४	१६	८	२८	२०	२४

॥ गु. द, मंगल के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घु	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं
०	०	१	१	१	१	०	१	०	०
२	१८	२०	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८
४८	३६	२४	४८	१२	३६	३६	०	४८	०

॥ गु. द. राहु को अन्दंशा में प्रत्यन्तर ॥

घु	रा	बृ	श	बु.	के	शु	सू	चं	मं
०	४	३	४	४	१	४	१	२	१
७	९	२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०
१२	३६	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४

॥ शनि की दशा और शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर ॥

घु	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ
०	५	५	२	६	१	३	२	५	४
९	२१	३	३	०	२४	०	३	१२	२४
१	२८	२५	१०	३०	९	१५	१०	२७	२४
३०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	

॥ श. द. बुध के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श
०	४	१	५	१	२	१	४	४	५
८	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९	३
४	१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२	२५
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

॥ श. द. केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु
०	०	२	०	१	०	१	१	२	१
३	२३	६	१९	३	२३	२९	२३	३	२६
१९	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	१०	३१
०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

॥ श. द. शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के
०	६	१	३	२	५	५	६	५	२
९	१०	२७	५	६	२१	२	०	११	६
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०

॥ श. द. सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु
०	०	०	०	१	१	१	१	०	१
२	१७	२८	१९	२१	१५	२४	१८	१९	२७
५१	६	३०	५७	१८	३६	९	२७	५७	०

॥ श. द. चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू
०	१	१	२	२	३	२	१	३	०
४	१७	३	२५	१६	०	२०	३	५	२८
४५	३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०

॥ श. द. मङ्गल के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

ध्रु	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं
०	०	१	१	२	१	०	२	०	१
३	२३	२९	२३	३	२६	२३	६	१९	३
१९	१६	५१	१२	१०	३१	१६	३०	५७	१५
३०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

॥ श. द. राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं
०	५	४	५	४	१	५	१	२	१
८	३	१६	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९
३३	५४	४८	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१

॥ श. द. गूरु के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	स
०	४	४	४	१	५	१	२	१	४
७	१	२४	६	२३	२	१५	१६	२३	१६
३६	३६	२४	१२	१२	०	२६	०	१२	४८

॥ बुध को दशा और बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर ॥

घ	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श
०	४	१	४	१	२	१	४	३	४
७	२	२०	२४	१३	१२	२०	१०	२५	१७
१७	४९	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

॥ बुध की दशा केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु
०	०	१	०	०	०	१	१	१	१
२	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	२०
५८	४९	३०	५१	४५	४२	३३	३६	३१	३४
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

॥ बुध द. शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के
०	५	१	२	१	५	४	५	४	१
८	२०	२१	२५	२९	३	१६	११	२४	२९
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०

॥ बुध द. सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु
०	०	०	०	१	१	१	१	०	१
२	१५	२५	१७	१५	१०	१८	१३	१७	२१
३३	१८	३०	५१	५४	४८	२७	२१	५१	०

॥ बुध की दशा चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू
०	१	०	२	२	२	२	०	२	०
४	१२	२९	१६	८	२०	१२	२९	२५	२५
१५	३०	४५	३०	०	४५	१५	४५	०	३०

॥ बुध की दशा मंगल के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं
०	०	१	१	१	१	०	१	०	०
२	२०	२३	१७	२६	२०	२०	२९	१७	२९
५८	४९	३३	३६	३१	३४	४९	३०	५१	४५
३०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

॥ बुध की दशा राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं
०	४	४	४	४	१	५	१	२	१
७	१७	२	२५	१०	२३	३	१५	१६	२३
३९	४२	२४	२१	३	३३	०	५४	३०	३३

॥ बुध की दशा गुरु के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा
०	३	४	३	१	४	१	२	१	४
६	१८	९	२५	१७	१६	१०	८	१७	२
४८	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४

॥ बुध की दशा शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर ॥

घ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ
०	५	४	१	५	१	२	१	४	४
८	३	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९
४	२५	१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२
३०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०

॥ केतु की दशा केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
२	८	२४	७	१२	८	२२	१९	२३	२०
५८	३४	३०	२१	१५	३	३	३६	१६	४९
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

॥ केतु की दशा शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ०	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के
०	२	०	१	०	२	१	२	१	०
३	१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०

॥ केतु की दशा सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ०	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
१	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१
३	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०

॥ केतु की दशा चन्द्रमा के अन्तरदशा में प्रत्यन्तर ॥

घ०	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू
०	०	०	१	०	१	०	०	१	०
१	१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०
४५	३०	१५	३०	०	२५	४५	१५	०	३०

॥ केतु की दशा मङ्गल के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ०	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
१	८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२
१३	३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५
३०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

॥ केतु की दशा राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ०	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं
०	१	१	१	१	०	२	०	१	०
३	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२
९	२४	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३

॥ केतु की दशा गुरु के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ०	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा
०	१	१	१	०	१	०	०	०	१
२	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०
४८	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४

॥ केतु की दशा शनि के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ
०	२	१	०	२	०	१	०	१	१
३	३	२६	२३	६	१६	३	२३	२९	२३
१९	१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२
३०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०

॥ केतु की दशा बुध के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श
०	१	०	१	०	०	०	१	१	१
२	२०	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६
५८	३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

॥ शुक्र की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा ॥

घ	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के
०	६	२	३	२	६	५	६	५	२
१०	२०	०	१०	१०	०	१०	१०	२०	१०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

॥ शुक्र की दशा रवि के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु
३	०	१	०	१	१	१	१	०	२
०	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

॥ शुक्र की दशा चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

ग	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू
०	१	१	३	२	३	२	१	३	१
५	२०	५	०	२०	५	२५	५	१०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

॥ शुक्र की दशा मङ्गल के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं
०	०	२	१	२	१	०	२	०	१
३	२४	३	२६	६	२९	२४	४०	२१	५
३०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

॥ शुक्र की दशा राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं
०	५	४	५	५	२	६	१	३	२
९	१२	२२	२१	३	३	०	२४	०	३
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

॥ शुक्र की दशा बृहस्पति के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा
०	४	५	४	१	५	१	२	१	४
८	८	२	१६	२६	१०	१८	२०	२६	२४
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

॥ शुक्र की दशा शनि के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ
०	६	५	२	६	१	३	२	५	५
९	०	११	६	१०	२७	५	६	२१	२
३०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०

॥ शुक्र की दशा बुध के अन्तर प्रत्यन्तर ॥

घ	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श
०	४	१	५	१	२	१	५	४	५
८	२४	२९	२०	२१	२५	२९	३	१६	११
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

॥ शुक्र की दशा केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर ॥

घ	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु
०	०	२	०	१	०	२	१	२	१
३	२४	१०	२१	५	२४	३	२५	६	२२
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

अन्यशास्त्रों की अपेक्षा इस शास्त्र का महत्त्व बताया जा रहा है।

बुधैर्भावादयः सर्वे ज्ञेयाः सामान्यशास्त्रतः।
एतच्छास्त्रानुसारेण संज्ञां ब्रूमो विशेषतः॥ ४॥

विमला-व्याख्या—अन्य फलित ज्योतिष के पारिभाषिक व व्यावहारिक शब्दों के साथ इस शास्त्र के अनुसार इस शास्त्र की विशेषता—

फलितज्यौतिष ग्रन्थों में लग्न-धन-सहज माता इत्यादि द्वादश भावों का जितना और जैसा नाम करण किया गया है, इस ग्रन्थ में भी ठीक उसी प्रकार द्वादश भावों का नामकरणादि समझना चाहिए। अतः इस लघुपाराशरी ग्रन्थ में अन्य फलित ग्रन्थों की अपेक्षा जो सविशेष विषय हैं मात्र उन्हें ही यहाँ स्पष्ट किया जा रहा है॥ ४॥

ग्रन्थ सागर में फलित ज्यौतिष मर्मज्ञ आचार्यों के वैदुष्यपूर्ण परामर्श से सिद्ध सिद्धान्त ग्रन्थ का नाम पाराशरी कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। उक्त आचार्यों में महर्षि पराशर निर्णायक के शुभ आसन में आसीन रहे होंगे, इस लिए इस ग्रन्थ का नाम पाराशरी कहा गया है। त्रिस्कन्ध ज्यौतिष के होरा और संहिता विभागों का सम्यगध्ययन के अनन्तर ही इस ग्रन्थ का सविशेष अध्ययन होना चाहिए अतएव जातक ग्रन्थों के आधार से, ग्रहों का स्पष्टी करण, लग्न और लग्नादि द्वादश भावों का गणित, लग्न सहित ग्रहों के गृह-होराद्रेष्काण, चतुर्थ, पञ्चम, सप्त, सप्तांश, नवम, दशम, एकादश द्वादशांश विभागों का ज्ञान तथा साथ-साथ संभव विचार के लिए ३०, ४०, ६० विभागों और उनके स्वामी ग्रहों को जानकर और इससे भी सूक्ष्मादि सूक्ष्म विभागों और उन-उन विभागों में गणनया जो जो राशियाँ आती हैं, उन-उन राशियों के अधिपति ग्रहों का ज्ञान, ग्रहों के परस्पर के मित्र-शत्रु-सम आदि तथा इनके परस्पर के सम्बन्ध, ग्रहों की परस्पर की दृष्टियाँ इत्यादि सभी निःशेष फलित विचार पद्धति पूर्वक नक्षत्रों से विंशोत्तरी अष्टोत्तरी, त्रिभागी, कालचक्री आदि दशाओं का गणित ज्ञात-ज्ञान करने के पश्चात् उक्त पाराशरी दशा या विंशोत्तरी दशा का शुभाशुभ फल विचार करने का आदेश आचार्य ने यहाँ दिया है। इसलिए उक्त पद्य से आचार्य का स्पष्ट तात्पर्य है कि भाव और ग्रहों के परस्पर के सम्बन्धों को ज्योतिषी ने ग्रन्थान्तरों से दर्पण-वत् साक्षात्कार करके अनन्तर इस ग्रन्थ से भविष्य का शुभाशुभ विचार करना चाहिए।

अतएव आचार्य ने अन्य शास्त्रों से लग्नादि द्वादश भावों में "भावादय : सर्वे" "शब्द प्रयोग से सभी विषयों का ज्ञान दैवज्ञ की बुद्धिगत होना आवश्यक कहा है। तथापि इस स्थल पर उक्त विषय पर सर्व साधारण के लिए प्रकाश डालना भी आवश्यक हो जाता है, जो निम्न भाँति है।

फलित ज्यौतिष में लग्नादि द्वादश भावों की समीक्षा समीचीन सटीक, हृदयंगम एवं वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर हुई है। निखिल सौरमण्डल का सटीक चित्रण हुआ है। यह कल्पना नहीं अपितु खगोल, ग्रहगोल गणित की महती देन है। गणितागत ग्रह का—

आकाशीय यथास्थान इस द्वादशभावात्मक ग्रहकुण्डली में सटीक दृश्य है। सृष्टि के आरम्भ दिन से सृष्टियन्त दिन तक के प्रत्येक दिन के प्रथम सूर्योदय से द्वितीय दिनारम्भ के सूर्योदय तक २४ घंटे से कुछ क्षण अधिक घण्टे में भूमण्डल, भूगोल का अपने अक्ष पर एक भ्रमण हो जाने से पृथ्वी पृष्ठ पर समग्र सौरमण्डलीय ग्रहविम्बों का तत्तत् समय में तत्तत् स्थल पर उन ग्रहों की किरणों को कोणीय माप से ०° से ९०° तक औदयिक से मध्याह्न तक का, ९०°, १८०° तक मध्याह्न से अस्त लग्न तक का, १८०°, २७०° तक अस्त से राश्यर्ध तक का और २७०° से ३६०° तक राश्यर्ध से द्वितीय उदय तक विभिन्न समयों में किरणों का विभिन्न प्रभाव तो हो ही रहा है। ग्रह गणित से सिद्ध भूमण्डल के प्रत्येक देशीय, नगरीय सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त, राश्यर्ध, द्वितीय सूर्योदय समय का मापक घटी-यन्त्र प्रत्यक्ष प्रमाण है। लोक जाग्रति के लिए सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि उपादेय या मापक यन्त्र भी फलित का काम करते हैं। सूर्य-चन्द्रग्रहण, ग्रहयुति, ग्रहयोगग्रहवेध, ग्रस्तोदयास्त-वक्र आदि प्रत्यक्ष दृग्योग्य है। यह विश्व के लिए एक महान् व्यवहारोपयुक्त शुभ फलित है।

उक्त द्वादशभावों की युक्तियुक्त कल्पना के साथ आकाशीय ग्रह की नियत स्थिति भी द्वादशभावचक्ररूपग्रह चित्र (नक्शे) में स्थापित कर देना प्राचीन आचार्यों की अमूल्य सूझ व देन है। आधुनिक विकसित वैज्ञानिक विश्व भी इससे आगे नहीं पहुँचा है। इस फलित ज्योतिष में ऐसा क्यों ?—यह प्रश्न ही उपस्थित हो रहा है। उस पर विचार करना आवश्यक है।

फलित ज्योतिष ने सृष्टि-आरम्भ विन्दु मेषादि सम्पात से ग्रहों की स्थिति को समक्ष कर तदनुसार ही सदा के लिए स्थिर एक रूप फलित शास्त्रों का निर्माण किया है। आज के खगोल से २३ दिसम्बर से दिन की वृद्धि (उत्तरायण सूर्य), २३ मार्च एवं २३ सितम्बर को दिन व रात्रि की समानता, सूर्य की भूमध्यगत स्थिति एवं २३ जून को दिनमान की परमाधिकता दक्षिणायन एवं रात्रि की वृद्धि प्रारम्भ होने लगती है। किन्तु फलित ज्योतिष तथा तदाधारित भारतीय धर्म व्यवस्था मीमांसक धर्म ग्रन्थ १३ या १४ जनवरी से उत्तरायण और १५-१६ जुलाई को ही दक्षिणायन कहते हैं। इसी सृष्टि-आरम्भ की उत्तर-दक्षिणायन गोलादि स्थिर ग्रह स्थित से फलित ज्योतिष मानव का शुभाशुभ भविष्य, एवं भारतीय धर्मशास्त्रीयमीमांसा भी इसी के आधार पर धर्म-कर्म-नीति-पर्व आदि की व्यवस्था देती है ? भारतेतर, विशेषतः पश्चिमी देशों में सायन लग्न एवं सायन ग्रह स्थितिवश जो २३ दिसम्बर को ही उत्तरायण मानते हुये भी भारतीय अनुभवगम्य फलित ही वहाँ भी विकसित होने जा रहा है।

भारतीय ज्योतिर्विदों के विचारों से गणितशुद्धि के लिए सायन ग्रह और सायनलग्न ही होने चाहिए, किन्तु फलित एवं धर्मशास्त्र के अनुसरण के लिए सायन पञ्चाङ्ग को निरयण गणित-परम्परा के अनुसार प्रायः १४ जनवरी को ही उत्तरायण ऐसा फलित व धर्मशास्त्र का निर्णय होना चाहिए, यही पद्धति आये दिन चल भी रही है।

द्वादशभावों में प्रत्येक भाव के अनेक पर्यायवाची शब्द है।

द्वादशभावों में यथास्थान ग्रहों को स्थापित करते हुए फलादेश करना चाहिए।

भारतीय फलित परम्परा—ग्रह गणित से सायन लग्न का मान ज्ञात कर उसमें अयनांश कम कर उसी के आधार से लग्नादि द्वादशभावों को अंकां में निम्न भाँति लिखा जाता है—

चक्र १

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	भावों के अंक
प्रथमभाव	द्वितीयभाव	तृतीयभाव	चतुर्थभाव	पञ्चमभाव	षष्ठमभाव	सप्तमभाव	अष्टमभाव	नवमभाव	दशमभाव	एकादश-भाव	द्वादशभाव	भावों का नाम
तनु	धन	भाई	अम्बु	बुद्धि	शत्रु	जाया	आयु	धर्म	राज्य	लाभ	व्यय	भावबोधक शब्द
शरीर	स्वम्	सहज	गृह	विद्या	अरि	स्त्री	मृत्यु	तीर्थ	कर्म	आय	समाप्ति	
देह	वित्त	पराक्रम	माता	पुत्र	बैरी	मदन	वय	तप	व्यापार	आगम	क्षय	
अङ्ग	अर्थ		पाताल	सन्तान	रोग	काम		व्रत	आस्पद		अपाय	
मूर्ति	वाक्		सुख	अपत्य	व्रण	स्मर			पिता			
इत्यादि	वाणी					पत्नी						
	कोष											

कुण्डली चक्र यां जन्मसमय के सौरमण्डल का सही चित्र—यह चक्र जन्माङ्ग या जन्म लग्न कुण्डली से बोधित होता है। इसे गोलाकार बनाना अधिक प्राकृतिक होता है। वर्गाकार या आयताकार जन्म कुण्डली रेखागणित युक्ति से स्वयं वृत्तान्तर्गत होती है। अतः सुविधानुसार यथेष्ट कुण्डलीचक्र बनाया जा सकता है।

चक्र नं० १

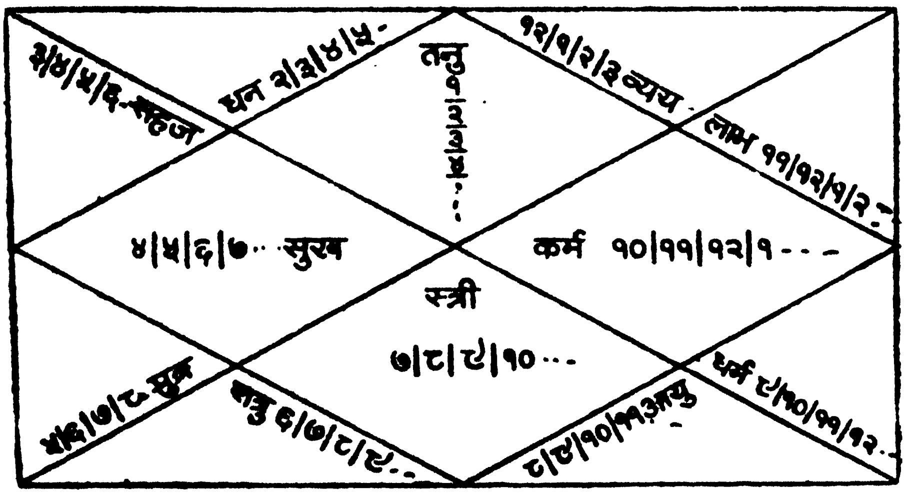

जिस समय जन्म होता है, उस इष्ट काल से गणित द्वारा पञ्चाङ्ग और ग्रहस्पष्टी ठीक कर उक्त चक्र में ग्रह रखने चाहिये। निम्न चक्र से प्रथमतः सौरमण्डल में क्षितिजगत दृश्य ३०° की जो भी राशि है, गणित से उनका ज्ञान आवश्यक है। एक वृत्त के ३६०° में ३०-३० अंश के १२ कोण होते हैं।

चक्र नं० २

निरयण मेष संक्रान्ति काल में (अयन गुरुत्वाकर्षण अभाव या उसके शून्य समय में) मेष राशि के आदिम बिन्दु का क्षितिज के साथ सम्पात जिस समय होगा, उस समय से

निरक्ष क्षितिजीय (अक्षांश शून्य भूपृष्ठीय देशों या भूमध्य रेखा धरातलीय पृथ्वी पृष्ठीय देशों में) किसी बिन्दु पर मेष राशि के अन्तिम बिन्दु की पहुँच तक मेष लग्न, जिसका अङ्क माप १ है, वह प्रथमभाव में स्थापित की जाती है। तदनुसार २-३-४···· १२ राशियाँ द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ-द्वादश भावों में होती हैं। सम्पूर्ण मेष राशि उदय काल, जो निरक्ष क्षितिज में २७९ पल तक में उदय होती है, उसका घटिकादिक मान ४ घटी ३९ पल अर्थात् $\frac{४/३९ \times २}{५}$ घण्टा मिनट = १ घण्टा ५१ मिनट १२ सेकण्ड के तुल्य होता है। राशियाँ पृथ्वी से सूर्य के चारों तरफ भ्रमण करती हैं, अत: राशियों का भ्रमण भी चक्र भ्रमण में पूर्व से पश्चिम तरफ होता है।

तात्पर्य यह हुआ कि मेष राशि जितनी देर में क्षितिज में उदय रहती है, उस काल का नाम मेषोदय काल, जब मेषान्त बिन्दु उदयक्षितिज को पार कर लेता है, तब वृष राशि का आदिम बिन्दु क्षितिज संलग्न होगा। वृष राशि के निरक्षदेशीय उदयपल, २९९ पल = ४ घटी ५९ पल = १ घण्टा ५९ मिनट ३६ सेकण्ड के तुल्य समय के अन्त में वृष राशि, लग्न राशि कही जायेगी, उदित होगी। इसी प्रकार वृषान्त बिन्दु = मिथुनादि बिन्दु का उदय क्षितिज प्रवेश से ३२३ पल = ५ घटी २३ पल = २ घण्टा ९ मिनट १२ सेकण्ड के पश्चात् पूरी मिथुन राशि, चक्र में क्षितिज के ऊपर होगी। इतने समय तक मिथुन लग्न होता है। यह राशियों का उदयमान शून्य अक्षांश (निरक्ष) देशों में होता है। अत: पृथ्वी के प्रत्येक देश, नगर, ग्राम में सूर्योदय, सूर्यास्त की तरह चन्द्रोदयस्तादि के भिन्नभिन्न कारण होते हैं। भूमध्य देशीय राशियों के उदयमान को आधार मानकर साक्ष ०° से ९०° तक के अक्षांश देशों में राशियों का अपने देशीय उदयमान, चर आदिक संस्कारों से निकाल कर लग्न साधन करना चाहिये। इति।

चक्र नं० २ द्रष्टव्य है—

तनु = लग्न स्थान में जब मेष लग्न संकेताङ्क १ होगा तो कर्क, तुला और मकर लग्न के संकेताङ्क ४, ७, १० पर की राशियाँ केन्द्र स्थानों पर होती हैं। उदय, मध्याह्न, अस्त और दशम। एवं द्वितीय दिवसीय उदय तक में अपने इष्ट समय पर बारहों लग्नों में कोई एक लग्न क्षितिज में आ जाता है। उदय लग्न तनु स्थान में, जब वृष लग्न होता है, तब केन्द्र स्थानों–२।५।८।११ में, तथा पणफर में ३।६।९।१२ लग्न राशियाँ स्वत: हो जाती हैं। यदि तनु = उदय लग्न स्थान में ३ मिथुन लग्न होता है तो पूर्व के केन्द्र स्थानों में १।४।७।१० में ३।६।९।१२ लग्न राशियाँ होती हैं। इसी प्रकार तनु = उदय लग्न स्थान में ४ कर्क राशि का अङ्क = ४ होने से केन्द्र स्थानों १।७।१० में ४।७।१०।१ लग्न राशियाँ होती हैं। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये।

तात्पर्य यही है कि १२ भावों में—

१।४।७।१० स्थानों का नाम केन्द्र स्थान है।

२।५।८।११ स्थानों का नाम पणफर स्थान है।

३।६।९।१२ स्थानों का नाम आपोक्लिम स्थान है।

१।४।७।१० और ५।९ स्थानों को क्रमशः केन्द्र और त्रिकोण भी कहते हैं। इत्यादि भावों की संज्ञा ग्रन्थागारों में प्रसिद्ध है, तथा प्रथम राशि चर, द्वितीय राशि स्थिर तथा तृतीय राशि द्विस्वभाव है। प्रकारान्तर से १।४।७।१० राशियाँ अर्थात् मेष, कर्क, तुला और मकर राशियों और लग्नों को चर राशियाँ या चरलग्न, वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ राशियाँ या लग्नों को स्थिर लग्न राशियाँ एवं मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशियों को द्विस्वभाव लग्न या द्विस्वभाव राशियाँ कहते हैं।

केन्द्रगत चरलग्न और चर राशियाँ होने से स्थिर राशियाँ पणफर एवं द्विस्वभाव राशियाँ आपोक्लिम में होती हैं।

स्थिर राशियाँ केन्द्रगत होने से द्विस्वभाव राशियाँ पणफर में और चरराशियाँ या चर लग्न आपोक्लिम स्थानों (३।६।९।१२) में होती है। इस प्रकार राशि और लग्नराशियों के विविध प्रकार के परिष्कार या विभेद होते हैं। १२ भावों के नामों की चर्चा पहले की जा चुकी है।

एक दिन, ६० घटी २४ घण्टे में १२ राशि लग्नों की ग्रह-स्थिति में ग्रह-स्थापन क्रम से ९ ग्रहों के स्थापन क्रम के अनुसार स्थितियों से प्रतिदिन के विभिन्न इष्ट समयों में १२ प्रकार की जन्म-कुण्डलियाँ या १२ प्रकार की वर्ष-कुण्डलियाँ होती हैं।

ध्यान देने का विषय है कि मेष राशिलग्न से वृषभादि मीन पर्यन्त लग्नराशियाँ धन, भाई, माता, पुत्र, शत्रु, स्त्री, आयु, धर्म, कर्म, लाभ और व्ययभावों में निश्चित रूप से रहेंगी। ऐसी स्थिति में यदि मेष ही लग्न है तो मेष लग्न में मेष राशि से शरीर का विचार, वृष से धन, मिथुन से भाई, कर्क से सुख या माता, सिंह से पुत्र-विद्या, कन्या से शत्रु-रोग, तुला से स्त्री काम मदन, वृश्चिक से आयु-छिद्र, धनु से धर्म-तीर्थ, मकर से राज्य-व्यापारादि, कुम्भ से आय-आय के स्रोत और मीन से व्यय-अपव्यय-सत्कर्म में सद्व्यय आदि का विचार किया जावेगा।

परिष्कार से उक्त स्थिति में मेष से मीन राशि १२ वें होने से शरीर के व्यय-विचार में, मीनराशि लग्न की प्रधानता होगी। व्ययभाव से अर्थ का ही व्यय नहीं, शरीर तक के व्यय का विचार होगा।

धनभागवत वृषराशि की १२ वीं राशि मेष राशि भाई भागवत मिथुन से १२ वें राशि में वृष से भ्रातृव्यय, मातृ स्थानगत कर्क राशि की १२ वीं व्यय-राशि मिथुन से मातृ या भूमि-घर इत्यादि अन्य प्रकार का व्यय, पञ्चमगत सिंह राशि की व्ययराशि— मातृभाव से पुत्र विद्यादि का, षष्ठगत कन्याराशि से १२ वीं राशि सिंह से शत्रु या रोग

व्यय, सप्तमगत तुलाराशि की व्ययगत कन्याराशि से स्त्री-सम्पत्ति की क्षति, आयुगत वृश्चिक राशि की व्ययकारिणी स्त्री-भावगत तुलाराशि, धर्मगत धनुराशि की व्यय-कारिणी आयुगत वृश्चिक, दशम मकरराशि राज्य-व्यापारादि की व्ययकारिका धर्मगत धनुराशि, आय-लाभ भावगत या एकादश गत कुम्भराशि की व्ययकारिका मकरराशि, व्ययगत मीन राशि की व्ययकारिणी कुम्भराशि स्वयं सिद्ध होती है।

इसी प्रकार की वृषादि लग्नगत राशियों की मेषादि प्रत्येक राशि के समीप की प्रतिलोम राशियाँ व्ययकारक होती हैं। इस प्रकार १२×१२=१४४ प्रकार की अनुलोम-विलोम कुण्डलियाँ एक ही दिन में होती रहती हैं।

आचार्य का युक्तियुक्त अनुभव –(१) लग्न = धन धान्यादि सम्पत्ति के साथ शरीर तक का व्यय विचार १२ वें भाव से।

(२) धन सम्पत्ति का व्यय, शरीर से सम्बन्धित होने से लग्नभाव, धन-भाव का व्ययभाव होता है।

(३) भाई-बन्धु जैसी सम्पत्ति में भौतिक सम्पत्ति सुवर्ण, भूमि आदि के विभा-जन, और उससे आयमान असन्तोष से धन-भाव भाई का व्ययकारक भाव होता है।

(४) मातृभाव जैसे परम श्रद्धामूर्ति माता के सुख का अभावकारक तृतीय भाव भ्रातृभाव ही होता है, क्योंकि एकच्छत्र मातृगोद रूप सिंहासन होते हुए भाई का मातृगोद सुख से वञ्चित होने से मातृभाव जन्य सुख का व्यय का कारण छोटा या लघु भाई ही होता है।

(५) पुत्र या विद्यादि गुणज्ञता की आकांक्षा रखने वाला पिता का पुत्र को ताड़ना माता को कम सह्य होने से पुत्र योग्यता की कामना चाहते हुए भी पञ्चम को माता नामक चतुर्थ भाव का व्ययकारक कहना युक्तियुक्त है।

(६) शत्रु या रोग का सामना करने के लिए सर्वप्रथम बुद्धि वैशद्य से रोग के लिए अच्छे चिकित्सक और शत्रुपराजय के लिए अच्छी मन्त्रणा आदि बुद्धिभाव का कार्य है। अतः छठे भाव जन्य दुष्फल का व्यय पंचम बुद्धिभाव होने से पंचमभाव को छठे भाव का व्यय कहना समीचीन है।

(७) सप्तमभाव—अपने शरीर की अर्द्धाङ्गिनी श्रीमती धर्मपत्नी उभयकुल (पितृ एवं पति) की कीर्ति, यश एवं सम्मान की विवर्धिका है। स्त्री पर भूल से भी आँख उठाने वाले से बढ़कर शत्रु दूसरा नहीं है। सारा जगत् स्त्री के वशीभूत है। कहा भी है—

'विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशनाः,
तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।'

स्त्रीहेतुक युद्ध या अशान्तियों से विश्व के बड़े से बड़े ऐतिहासिक ग्रन्थों के पन्ने अछूते नहीं हैं। अतः सुन्दर पवित्र स्त्री सम्पत्ति जैसी वस्तु का अपहरण तक करने वाला

वैरी शत्रु भाव ही होता है। फलित ज्योतिष ने जहाँ सप्तम भाव का नाम स्त्री या काम कहा है, ठीक तद्विपरीत निकटस्थ छठे भाव को शत्रुभाव की संज्ञा देना नितान्त समुचित है। यह एक अनुभवगम्य ज्ञान ही नहीं, विज्ञान भी है।

(८) अष्टमभाव का नाम आयु या मृत्यु है। आयु जैसी सुन्दर संरक्षणीय वस्तु पर सदा मृत्युभय बना है। सावधानी से यम, नियम, स्वच्छ आहार-व्यवहारादि से शतायु कामना द्वारा प्राप्य इस पवित्र आयु पर सबसे बडा आक्रामक पदार्थ स्त्री है।

'नारी तु मदनज्वाला रूपेन्धनसमीहिता।
कामिभिः यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥'

स्वस्थ पुरुष के यौवन और धनरूप आहुतियों को, रूपसौन्दर्यरूप इन्धन से युक्त, मदनज्वाला नारी पचा देती है। धन एवं आयु तक का क्षय कर देती है, इसलिए आयु का व्ययकारक स्त्री नामक सप्तमभाव ही मुख्य होता है।

(९) नवम भाव का नाम धर्म, तप या तीर्थ है। जीवन पर्यन्त तीर्थ, व्रत, जप, तप चान्द्रायणादि कृत्यों से शरीर पोषणादि सुरक्षारहित जीवन का व्यय या आयु संरक्षण की उपेक्षा अथवा जीवन-पर्यन्त मात्र धर्माचरण सम्पन्न शरीरी के शरीरत्याग में आयुभाव का स्वाभाविक धर्म है कि वह सभी को मृत्यु के मुख में ले जाता है। अतः धर्मभाव का व्ययभाव आयुभाव से ही होता है। धर्म, व्रत, नियम, "तीर्थादिगमन आयु की सत्ता पर अवलम्बित हैं। धर्माचरण का सत्य संकल्प आयु की सत्ता पर निर्भर होने से धर्मादि कृत्य के लिए आयु बनी रहनी चाहिए। सदा आयुष्य की सतर्कता से रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि महान् संकल्पित धर्माचरण की प्रतीक्षाकाल के लिए शरीर के व्यय के लिए कालभगवान् खड्ग हस्त होकर आयु की समाप्ति कर देता है। इसलिए धर्मभाव का व्ययकारक अष्टम आयुष्यभाव कहना युक्तिसंगत ही है। धर्म नजह्याज्जीवितस्यापि हेतोः" धर्म संकट के समय धर्म रक्षा ही परम कर्तव्य है—शरीर से यदि धर्म-संकट नहीं दूर किया जा सकता है तो शरीरत्याग ही धर्म होगा तब भी धर्म साधारण श्रेष्ठ है "देव हितं यदायुः" धर्ममूलक कथन है ॥ ४ ॥

(१०) दशमभाव का नाम राज्य, पिता या व्यापार है। राज्य-पितृ-व्यापार सम्पत्ति के परिवर्धन में स्वच्छ दोषरहित अर्थ सम्बन्ध होना चाहिए। ज्ञानतराजू की तौल से ही राज्य का व्यापार सफल, सुस्थिर होता है। धर्म का राज्य, धर्म का व्यापार न होने से अधर्म का आचरण होना ही राज्य व व्यापारादि के विनाश का कारण हो जाने से धर्मभाव ही व्यापारभाव का विनाशक हो जाता है। अतः व्यापारभाव के व्यय में धर्मभाव ही हेतु होता है। 'तेन त्यक्तेनभुञ्जीथाः मागृधः कस्यचिद्धनम्'—उपनिषद् वाक्य से सारी धन-सम्पत्ति में परकीयता के भाव से उसका सत्कर्म में विनियोग एवं धर्म, तीर्थ, जप, तप आदि में व्यय करना ही श्रेयस् प्राप्ति का मुख्य

अंग होने से राज्यश्री तक की त्यागभावना के व्यय से धर्मभाव राज्यभाव का व्ययकारक सिद्ध होता है।

(११) अच्छी आय, अच्छे लाभ के लिए राज्यसत्ता या व्यापार कर्म का ही मुख्य आश्रय होता है। अर्थदोष (द्रव्यकोष), अर्थ सम्बन्धी अपराध के लिए राज्यदण्ड राजसत्ता का सर्वोपरि प्रबल दण्डविधान होने से अवैध प्रकार से संचित भारी सम्पत्ति को राजसत्ता द्वारा क्षण में ही धराशायी कर देने से आय लाभभाव का ह्रास या व्ययकारक राजभाव होता है। अतः राजभाव को आयभाव का व्ययभाव कहना युक्तियुक्त है।

(१२) व्ययभाव तभी सार्थक होता है जब अच्छी आय हो। आय ही यदि शून्य हो तो व्यय कहाँ से होगा ? इसलिए व्ययभाव के व्यय का कारण आयभाव ही हो सकता है। व्ययभाव से द्वितीयभाव लग्नभाव है। व्ययभाव का लग्न भाव धनभाव होने से धन का व्यय होना स्वाभाविक धर्म होने से व्ययभाव का नाम व्यय होना ही सार्थक सिद्ध होता है। इत्यादि।

ग्रहों की दृष्टि—

पश्यन्ति सप्तमं सर्वे शनिजीवकुजादयः।
विशेषतश्च त्रिदशत्रिकोणचतुरष्टमान् ॥ ५ ॥

विजया व्याख्या—प्रत्येक दृश्य और द्रष्टा ग्रहों में दृष्टि का मापदण्ड बताया जा रहा है—

सप्तम भाव को सभी ग्रह प्रत्यक्ष पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। शनि बृहस्पति और मंगल क्रमशः तीसरे दशवें, नवम पञ्चम और चतुर्थ स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।

चौथे श्लोक के व्याख्यान में द्वादश भावों पर विचार व्यक्त किया गया है। प्रत्येक भाव से दूसरा भाव ३० अंश की दूरी पर होता है। भमण्डल या क्रान्ति वृत्त के समान १२ विभागों में प्रत्येक विभाग का मान $\frac{३६०^\circ}{१२}=३०^\circ$ स्पष्ट दृग्गोचर है। द्रष्टा और दृश्य विचार से विचाराश्रयीभूतग्रह द्रष्टा, एवं विचाराश्रयी भाव दृश्य होता है। साधारण सा व्यावहारिक विषय है कि आमने सामने के दो व्यक्ति एक दूसरे को पूर्ण रूप से देखते हैं। पूर्ण रूप का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि आमने सामने के दो व्यक्ति एक दूसरे को सर्वतोभावेन सर्वावयवेन देखते हैं। गणित खगोल के ज्ञान से यह स्पष्ट है कि आमने सामने के दो व्यक्ति एक दूसरे को परस्पर एक दूसरे से आधे से कम ही विभाग को देखते हैं। पूर्णिमा तिथि को सूर्यास्त के समय पूर्व क्षितिज में उदित पूर्ण चन्द्र बिम्ब भी कभी भी पूर्ण नहीं दीखता क्योंकि भूपृष्ठस्थ द्रष्टा की आकाश की दृष्टि से वह अपनी दृष्टिपथ की अधोगोलस्थ चन्द्र बिम्ब का आधा से कम ही विभाग देख सकता है गणित गोल से सिद्ध है किन्तु व्यवहार में पूर्ण चन्द्रोदय ही कहा जाता है।

पश्चिमक्षितिज से पूर्वाभिमुख या पश्चिमक्षितिज से रात्रि पूर्वक्षितिज तक ६ राशियों एवं १२ राशियों यथा स्थान भूमण्डल में हैं तो स्वाभाविक है पूर्व बिन्दु से पश्चिम बिन्दु ७वीं राशि पर होने से उक्त इसी अभिप्राय से "पश्यन्ति सप्तम सर्वे" सभी ग्रह अपने से सप्तम स्थान को (आमने-सामने में दृश्य द्रष्टा के होने से) पूर्णदृष्टि से देखते हैं, ऐसा कथन समीचीन है। तथापि बुद्धि का विशेष उपयोग करते हुए यहाँ भी ध्यान देना चाहिए कि दृश्य और द्रष्टा ग्रह का अन्तर जिस समय पूर्ण ६ राशि है वहीं पर पूर्णदृष्टि की स्थिति होगी। इससे आगे पीछे ०'''''''१५ एवं १६''''''''' ३०' तक के अन्तरों की ह्रासवृद्धि वश दृष्टि समझ कर फलादेश करना चाहिए।

सप्तम स्थान स्त्री का स्थान है। स्त्री रक्षा से ही अपनी कुल परम्परा मानमर्यादा के साथ धर्म रक्षा होती है इस लिए स्त्री पर सदा दृष्टि रखने से और उसके संरक्षण करने से गृहस्थ जीवन शुभद सुखद एवं वर्द्धमान होता है इसी लिए प्रत्येक व्यक्ति की सप्तम भाव पर (स्त्री भाव पर) पूर्ण दृष्टि स्वाभाविक होती है, इसी लिए सभी ग्रहों से भी सप्तम स्थान पर परिपूर्ण दृष्टि होना साधु कहा है।

फलित ग्रन्थों में दृष्टियों की विभिन्न पद्धतियाँ हैं, किन्तु इस ग्रन्थ में ग्रहों की एक परिषद या सभा है, जिसमें सूर्य चन्द्रमा को राजा, मंगल को नेता, शनि को सेवक गुरु और शुक्र को आचार्यत्व और बुध ग्रह को राजकुमारत्व का पद प्राप्त होता है। ग्रहों की राजसभा में शनि ग्रह का स्थान अंगरक्षक होने से तृतीय भाव = पराक्रम और दशम भाव :: राज्यभाव पर शनि की पूर्ण दृष्टि होना स्वाभाविक होता है।

त्रिकोण अर्थात् पञ्चम नवम विद्या और धर्म का संरक्षण आचार्य या कुल गुरु के अधिकार का विषय होने से तीसरे और दशवें पर गुरु ग्रह की पूर्ण दृष्टि होनी ही चाहिए।

एवं चतुर्थ स्थान = ग्रह मन्त्रणा, अष्टम स्थान = आयु स्थान जो शत्रु या आक्रमकों के खतरे से खाली नहीं है यहाँ सदा सतर्कता बर्तनी चाहिए, तस्मात् ऐसे स्थान पर नेता की दृष्टि सदा सतर्क ही रहनी चाहिए अत एव नेता ग्रह, मंगल ग्रह की चतुर्थ और अष्टम पर पूर्ण दृष्टि होती है।

जैमिनि ऋषि के मत से दृष्टि विचार करते हुए राशियों पर दृष्टि विचार से— चर राशियाँ अपने से द्वितीय धनभावस्थ स्थिर राशि को छोड़ कर शेष सभी स्थिर राशियों को देखते हैं। जैसे मेष राशि चर राशि है उससे द्वितीय वृष राशि (धनभावस्थ) को छोड़ कर मेष राशि की पूर्ण दृष्टि, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ राशियों पर होती है। तथा वृष स्थिर राशि अपने से १२ वें मेष चर राशि को छोड़ कर शेष कर्क तुला और मकर राशि को पूर्ण दृष्टि से देखती है। तथैव द्विस्वभाव मिथुन राशि अपने को छोड़ कर शेष कन्या, धनु और मीन राशियों को देखती है। इसी प्रकार

चर-स्थिर-द्विस्वभाव गणनया द्वितीय चर कर्क राशि भी, अपने से द्वितीय धन भाव गतस्थिर सिंह राशि को छोड़ कर शेष वृश्चिक कुम्भ और वृष राशियों को देखती है इत्यादि। महर्षि जैमिनि के मत से "राशियों पर राशियों की ही दृष्टि होती है" ऐसी शङ्का के समाधान के लिये ऋषि ने "तन्निष्ठाश्च तद्वत्" इस तीसरे सूत्र से स्पष्ट कह दिया है जैसा कि चर राशि गत ग्रह अपने से द्वितीय स्थिर राशि गत ग्रह को छोड़ कर अन्य सभी स्थिर राशि गत ग्रहों को देखते हैं। प्रसंगागत विचार पर्याप्त है।

भावेश ग्रहों की शुभाशुभता—

सर्वे त्रिकोणनेतारो ग्रहाः शुभफलप्रदाः।
पतयस्त्रिषडायानां यदि पाप फलप्रदाः॥ ६॥

विजया-व्याख्या—लग्नादि द्वादश भाव वश भावाधीशात्वेन ग्रहों की शुभाशुभता बताई जा रही है—

पाप या शुभ कोई भी ग्रह त्रिकोण (लग्न नवम पञ्चम) का अधिपति होने से वह अपनी दशा और अन्तर्दशाओं में शुभ फल देता है। तथा ३,६,११, तीसरे, छठे और ११ वें भावों के अधिपति शुभ या पाप जो भी ग्रह हो वह पाप फल अर्थात् अपनी दशा और अन्तरादि दशा समयों में पाप फल प्रद होता है। अर्थात् अशुभ फलद या अनीप्सित फल देता है।

अन्य जातक शास्त्रों में स्वाभाविक जो शुभाशुभ ग्रह कहे गए हैं, तो उन्हें यहाँ भावाधीश वश या भाव सम्बन्ध से शुभाशुभ ग्रह कहा गया है।

क्षीणचन्द्रमा, सूर्य, मंगल और शनि ये स्वाभाविक पाप ग्रह कहे गए हैं। पूर्णचन्द्रमा बुध बृहस्पति और शुक्र ये स्वाभाविक शुभ ग्रह कहे गए हैं। "बुध सूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ" वराहाचार्य के अनुसार बुध और शनि नपुंसक ग्रह हैं। "नपुंसक" नहीं पुरुष और नहीं स्त्री अर्थात् स्त्री पुरुष उभयधर्मा व्यक्ति शीघ्र किसी भी अन्य पुरुष या स्त्री के प्रभाव में आ जाता है इसलिये बुध ग्रह का स्थान शुभग्रहों की गणना में होते हुए भी "संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति" न्याय से पाप ग्रहों का सहचारी होने से बुध ग्रह भी पाप ग्रह हो जाता है अतः स्वभावतः शुभ ग्रह होने से शुभ साहचर्य से बुध ग्रह में सविशेष शुभत्व स्वतः सिद्ध हो जाता है।

"सर्वे त्रिकोण नेतारः" यहाँ पर "नेतारः" बहुवचन प्रयोग से ७ ग्रहों में जो त्रिकोण के मालिक हो जाते हैं वह सब शुभफल देते हैं, बहुवचन से चाहे पापी ग्रह या शुभ ग्रह जो भी त्रिकोणाधीश होंगे वे शुभ फलद होंगे स्पष्ट होता है।

अतः त्रिकोण शब्द से केवल पञ्चम नवम भाव ही समझना भूल है, "नेतारः बहुवचन प्रयोग से त्रिकोण स्वामी ३ या इससे अधिक ग्रह अर्थ करना उचित होगा।

इसलिए त्रिकोण शब्द का तात्पर्य लग्न पञ्चम और नवम भाव से सम्बन्ध रखता है। खगोल दर्शन से भी किसी वृत्त के प्रारम्भ बिन्दु से समाप्ति ३०° तक की एक राशि से, १२०° १५०° तक पञ्चम भाव एव २४०° २७०° तक नवम भाव की सीमा में जो समभुज कोण का एक त्रिभुज उत्पन्न होता है वही त्रिकोण त्रिभुज अर्थात् लग्न नवम और पञ्चम भाव का द्योतक प्रत्यक्ष है।

यदि केवल त्रिकोण नेतारो पाठ समीचीन है तो सर्वे ग्रहा: की जगह केवल ग्रहो पाठ होना चाहिए था इसलिये वह सभी बहुत ग्रह जो त्रिकोणाधीश लग्न पञ्चम नवम के अधीश हैं शुभ होते हैं कहा गया है। यदि पञ्चम नवम को ही त्रिकोण शब्द से उच्चारित किया जायगा तो मेष से मीन तक किसी भी लग्न से दो ही ग्रह त्रिकोणाधीश होंगे "सर्वे" शब्द का प्रयोग निरर्थक हो जाता है इसलिए त्रिकोण शब्द से लग्न नवम और पञ्चम भाव ही अभीष्ट होते हैं। लग्न जहाँ त्रिकोण शब्द का बोधक है वह केन्द्र शब्द से भी उच्चारित हो जाने से कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। इसी प्रकार किसी भी भाव की लग्नादि कल्पनया उस भाव से वह, भाव पाँचवा भाव और नवम भाव त्रिकोण होंगे और किसी भी भावगत ग्रह से ग्रह निष्ठ भाव उससे पञ्चम नवम भाव को भी त्रिकोण कहते हुए ग्रहनिष्ठ भाव को लग्न या प्रथम केन्द्र कहते हुए त्रिकोण भी कहने की परम्परा बुद्धिगत करने से दशादिकों का शुभाशुभ विचार करना उचित होता है।

भावों का विचार पूर्व में कर आए हैं, तथापि लग्न भाव से शरीर का शुभाशुभ विचार किया जाता है। यदि यम नियम आहार, विहारादि शुभ कर्म से शरीर स्वस्थ सुखी बना रहेगा, तभी लौकिक और पारमार्थिक शारीरिक कर्तव्य शुभ होंगे। शरीर को अपने वश में रखना सर्वोपरि योग है, ऐसे युक्ताहार विहार संयम से प्रचालित शरीर को अपने वश में करने से योगसिद्धि होने से अपने में साधुत्व सम्पन्नता होती हे और ऐसा शरीर जगद्धिताय होने से अर्थात् लग्न भाव की स्वाभाविक शुभता सिद्ध होती है।

इसी प्रकार पञ्चम स्थान विद्या का और नवम स्थान धर्म, तीर्थ, व्रतादि का होने से "विद्यायाऽमृतमश्नुते" विद्याधनं सर्वधनं प्रधानम्" तथा "यत्किञ्चिदुर्लभं लोके ससर्वं तपसा साध्यं" अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति तपस्या से सुलभ हो जाने से पञ्चम नवम भावों की शुभभाव संज्ञा की गयी है। तत्व यही सिद्ध है कि लग्न पञ्चम और नवम भावों को शुभभाव कहा गया है।

इसी प्रकार गृह-भूमि-वाहन-मातृ प्रभृति सकल सुखैश्वर्य पदार्थों का व्यय कारक तृतीय भाव, एवं सुन्दर सुजात गुण वर्ग विभूषिता धर्मपत्नी जैसे स्त्री रत्न का अपचय या हानि कारक षष्ठ भाव, तथैव पराभोक्ष विद्या साधिका योग विद्या से शरीर व्यय

करने की प्रक्रियाओं में माया जाल में लिप्त कर पारमार्थिक मोक्ष साधक १२वें भाव का व्ययकारक ११ वां भाव, आय भाव की संज्ञा अशुभ भावों में समझी गयी है।

तत्वतः लग्न पञ्चम नवम भावों के अधिपति ग्रहों को शुभ ग्रह एवं तृतीय षष्ठ एवं द्वादश भावों के अधिपति ग्रहों को अशुभ ग्रह समझते हुए शेष द्वितीय-चतुर्थ-सप्त-माष्टम-दशम और द्वादश भावों में १.४.७.१० को केन्द्र और २.८ को पणफर तथा अधि-पति ग्रहों को त्रिकोणेश और त्रिषडायेश ग्रहों के सम्बन्धों का तारतम्य पूर्वक विचार करते हुए शुभ फल और अशुभ फल का आदेश करना चाहिए। आचार्य का कथन स्पष्ट होता है ॥ ६ ॥

न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्याः केन्द्राधिपा यदि।
क्रूराश्चेदशुभं ह्येते प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ७ ॥

विजया-व्याख्या—स्वाभाविक पाप और शुभ ग्रहों में सम्बन्ध वशेन शुभाशुभता कही जा रही है।

केन्द्राधीश ग्रहों का और अन्यभावाधीश होने से उन सभी के परस्पर के सम्बन्धों के आधार से शुभ या अशुभ फल विवेचन किया जा रहा है।

यदि स्वाभाविक शुभ ग्रह (चं. बु. बृ. शु.) केन्द्र १, ४, ७, १० के स्वामी होते हैं तो उन ग्रहों की जो स्वाभाविक शुभफल देने की शक्ति है वह शक्ति स्वतन्त्र होते हुए भी परतन्त्र हो जाने से स्वाभाविक शुभग्रह होते हुए भी शुभ ग्रहों की दशान्तरदशादि में शुभ फल नहीं होता है।

इसी प्रकार स्वाभाविक पाप ग्रह (सू. मं. श. क्षीणचन्द्र और पापयोग से बु.) यदि केन्द्र अर्थात् १।४।७।१० के स्वामी होते हैं तो ये पाप ग्रह भी सामान्य शास्त्र वाक्य से अशुभ फल नहीं देते। तात्पर्य केवल केन्द्रेश ग्रह जो शुभ या अशुभ ग्रह हो उसी से शुभाशुभ फल नहीं समझना चाहिए। आचार्यों का अनुभव है कि शुभ ग्रह जो केन्द्रेश भी है तो भी उससे प्राप्त होने वाला शुभ फल किसी अन्य भावेशत्व के सम्बन्ध की अपेक्षा रखता है। एवं स्वाभाविक पाप ग्रह अपने द्वारा दीयमान अशुभ फल में केवल केन्द्रेशत्व गुण वैशिष्ट्य से अपना क्रूर फल प्रदान करने में अन्य भावेशत्व स्वयं हो या अन्य जो ग्रह हो उसके सम्बन्ध की अपेक्षा रखता है।

प्रथम केन्द्रेश से द्वितीय केन्द्रेश बली, द्वितीय केन्द्रेश से तृतीय (सप्तम) केन्द्रेश एवं दशमेश सबसे बली तथैव त्रिकोणेशों में लग्नेश से पञ्चमेश और पञ्चमेश से नवमेश बली होता है, इसी प्रकार तृतीयेश से षष्ठेश एवं षष्ठेश से एकादशेश बली होता है। तात्पर्य: केन्द्रेशों में दशमेश, त्रिकोणेशों में नवमेश और त्रिषडायेशों में एकादशेश (लाभेश) सबसे बली होते हैं।

अन्य जातक ग्रन्थों के अनुसार इस ग्रन्थ में भी सूर्य केवल सिंह राशि का एवं चन्दमा केवल कर्क राशि का स्वामी होता है" ऐसा स्वीकार किया गया है। तथा शेष पाँच ग्रहों को (मंगल-बुध-बृहस्पति-शुक्र और शनि) प्रत्येक को दो-दो राशियों का स्वामी (पूर्व में भी बताया गया है) कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि सूर्य और चन्द्रमा कभी केन्द्रेश (१।४।७।१०) कभी त्रिकोणेश १।५।९ कभी ३, ६, ११ त्रिषडायेश (३।६।११) कभी त्रिकोशेश १।५।९ और कभी २, ८, १२ (द्वयष्ट-व्ययाधीश भावों के ही स्वामी होंगे।

उदाहरणतः जैसे—मेष लग्न से स्वाभाविक पाप ग्रह सूर्य में पञ्चमेशत्व सम्बन्ध से शुभता आ जाती है, तथा चन्द्रमा में केन्द्रेशत्व मात्र एक ही धर्म होने से उसकी क्षीण एवं पूर्णता वश शुभाशुभता समझी जानी चाहिए। मंगल जो स्वाभाविक पाप ग्रह है वह केन्द्रेश है या त्रिकोशेश है किन्तु अष्टमेशत्व धर्म से पापाधिक्य आ जाता है।

बुध में तृतीयेशत्व के साथ षष्ठेशत्व सम्बन्ध से पापत्व की वृद्धि हो जाती है।

बृहस्पति में स्वाभाविक शुभता के साथ नवमेशत्व-धर्म आ जाने से विशेष शुभता कहते हुए व्ययेशत्व सम्बन्ध से साधारण शुभता कही जावेगी।

शुक्र में सप्तमेशत्व सम्बन्ध के साथ द्वितीयेशत्व सम्बन्ध हो जाने से शुक्र की दशान्तरादिदशा समयों में जातक की मृत्यु या मृत्युभय का संकेत होने से उसके (शुक्र) शुभत्व की हानि ही कही जावेगी।

शनि में स्वाभाविक अशुभता के साथ केवल केन्द्रेशत्व दशमभावाधीशत्व से जो शुभता प्राप्त होती है वह एकादशभावाधीशता के सम्बन्ध से न्यून हो जाना स्वाभाविक होगा।

इन-इन भावों या भावाधीश ग्रहों के सम्बन्ध के साथ-साथ जन्म समय में सूर्यादिक सातों ग्रहों एवं राहु केतु सहित ९ ग्रहों की स्थिति जन्मपत्रिका में कहाँ और कैसी है ? इत्यादि समझ कर विचाराश्रमीभूत भावाधीश ग्रह और उसके मित्र शत्रु सम-सम्बन्धी अन्य ग्रहों की उच्चनीच षड्वर्ग संशुद्ध संस्थिति को समझकर ही शुभाशुभ फल विचार में बुद्धिमान् ज्योनिर्विद् को सफल और यशस्वी होना चाहिये।

यद्यपि राहु और केतु ग्रहों की कोई भी राशीश्वरता नहीं है, तो लग्नादि द्वादश भावों में यत्र तत्रापि राहु केतु ग्रहों की संस्थिति जहाँ हो उस भावाधीश ग्रह के साथ राहु केतु ग्रहों के सम्बन्धों के विचार पूर्वक उन राहु केतु ग्रहों की दशान्तर दशादि में शुभाशुभ फलादेश तारतम्य से किया जाना चाहिए ऐसा आचार्यों का मतैक्य है ॥७॥

व्ययद्वितीयेश के सम्बन्ध—

लग्नाद्व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः।
स्थानान्तरानुगुण्येन भवतः फलदायकौ ॥ ८ ॥

व्ययभावेश से सम्बन्धित द्वितीयभावेश ग्रहों के सम्बन्ध विचार—

विजया-व्याख्या—लग्न से, व्ययेश और द्वितीयेश जो ग्रह हैं वे दूसरे ग्रहों के साहचर्यसे अन्य स्थानानुरूप जिस ग्रह से सम्बन्धित होते हैं तदनुरूप फल देते हैं।

पूर्व श्लोक से, केन्द्रश (१।४।७।१०) ये ४ स्थान, त्रिकोणेश (१।५।९) और त्रिषडायेश (३।६।११) इस प्रकार ९ भावों के सम्बन्धों का विचार किया गया है। अब शेष, २, ८, और १२ भावों से सम्बन्धित ग्रहों का विचार करना चाहिए। किन्तु उक्त श्लोक ८ में केवल दो भावों की द्वितीय और द्वादश भाव, या द्वितीय द्वादश भावस्थ ग्रहों के परस्पर के सम्बन्धी ग्रहों से शुभाशुभ फल विचार किया जा रहा है। यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि मेषादि द्वादश राशि लग्नों में जो भी लग्न राशि होगी उससे दूसरी राशि धन और १२वीं भाव में एवं १२वीं राशि व्यय भाव में होगी। १२ राशियों में मेष–मिथुन–सिंह–तुला–धनु और कुम्भ राशियाँ यदि लग्न में होंगी तो मीन–वृषभ–कर्क–कन्या–वृश्चिक और मकर ये सम राशियाँ १२ वें घर में, वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये ही सम राशियाँ द्वितीय भाव में निश्चित रूप से बैठेंगी। इसी प्रकार यदि २, ४, ६, ८, १० और १२ अर्थात् वृष-कर्क-कन्या-वृश्चिक-मकर और मीन राशियाँ यदि लग्न में होंगी तो १, ३, ५, ७, ९ और ११ वीं राशियाँ अर्थात् मेष-मिथुन-सिंह-तुला-धनु और कुम्भ राशियाँ द्वितीय भाव में रहेंगी। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह कि यदि लग्न में विषम राशि हो तो द्वितीय द्वादश में समसंज्ञक राशियाँ एवं यदि लग्न समराशिगत होगा तो द्वितीय द्वादश में विषम राशियाँ ही होंगी, आचार्यों का यहाँ पर सम-विषम राशियों के परस्पर के सम्बन्धों के आधार से भी शुभाशुभ फल विचार करना चाहिए यह भी एक सुस्पष्ट मत सिद्ध हो रहा है।

तथा जैसे मेषादि·······मीनान्त क्रम गणना सुप्रसिद्ध है वैसे ही मीनादि कुम्भमकर धनु-मेषान्त से उत्क्रम गणना सम्बन्धेन भी दशम-सप्तम-चतुर्थ लग्न, पञ्चम-नवम लग्न, एकादश, षष्ठ, तृतीय समझते हुए व्ययद्वितीयेशौ की जगह द्वितीयेशव्ययेशौ भी समझने चाहिए। तात्पर्य कि "प्रबलाश्चोत्तरोत्तराः" के आधार से जैसे लग्न प्रथम केन्द्र से द्वितीय केन्द्र चतुर्थ बलवान् की जगह लग्न से दशम दशम से सप्तम, और सप्तम से चतुर्थ केन्द्र सबसे अधिक बली समझा जाना चाहिए उभय क्रमोत्क्रम गणनाकी स्थितियों में सप्तम केन्द्र अपनी ही जगह पर बली रहेगा।

उक्त विवेचन से समराशिस्थ ग्रह विषम स्थान के अनुरूप एवं विषम राशिस्थ ग्रह समस्थान के अनुरूप फल देंगे ऐसा भी संकेत उक्त कथन से समझना चाहिए।

लग्न से व्यय और द्वितीयेश ग्रहों का परस्पर के सम्बन्ध वश जो शुभाशुभ फल विचार किया जावेगा तो वह सम्बन्ध क्या-क्या हो सकते हैं विचारना आवश्यक है।

आचार्य ने यहाँ पर शुभाशुभ विचार के लिए "स्थानान्तरानुगुण्येन भवतः

फलदायको" कहा है। स्थानान्तरनुगुण्य शब्द से ग्रह व भावों से ६ प्रकार के परस्पर के सम्बन्ध घोषित हो सकते हैं। जो निम्न भाँति हो सकते हैं।

(१) स्थान सम्बन्ध, (२) अनुगुण सम्बन्ध, (३) सहायक सम्बन्ध, (४) पोषक सम्बन्ध, (५) युक्ति सम्बन्ध और (६) प्रकारक सम्बन्ध।

(१) जिस ग्रह की दशा का विचार किया जा रहा है यह ग्रह जिस भाव में है, उस भाव के गुण धर्म भी फलित होते हैं।

(२) उक्त ग्रह का सम्बन्धी ग्रह जिस भाव में बैठा है उस भाव के भी गुण धर्म भी उस जातक की दशा विचार में उपलब्ध होंगे।

(३) विचाराश्रयीभूत ग्रह (दशानाथग्रह) जिस भाव का स्वामी होगा उस भावज धर्म भी उस ग्रह दशा भोग समय में जातक को प्राप्त हो सकेंगे।

(४) तीसरे सम्बन्धी ग्रह का सम्बधी ग्रह जिस भाव का स्वामी है, वह भाव राशि उक्त ग्रह की पोषक सम्बन्धी कही जावेगी।

(५) विचाराश्रयीभूत ग्रहस्थ राशि का स्वामी जिस राशि में है वह राशि युक्ति सम्बन्धी कही जावेगी।

(६) युक्तिसम्बन्ध कारक ग्रह की राशि का अधिपति ग्रह जिस राशि में वह राशि प्रकार सम्बन्धी कही जाती है।

इस प्रकार के उक्त सम्बन्धों को बुद्धिस्थ करते हुए तब जातक के भविष्य के शुभाशुभ फलादेश के लिए दशान्तर्दशाप्रत्यन्तर्दशास्थूल दशा और सूक्ष्म दशाओं का अभीष्ट समय समझ कर सुविकसित बौद्धिकस्तर से विचार कर फलादेश करना चाहिए॥ ८॥

भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः।
स एव शुभ सन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत्स्वयम्॥ ९॥

विजया-व्याख्या—अष्टमेश क्यों अशुभ है ? और वह शुभ भी होता है कब ? अष्टमेश ग्रह की शुभाशुभता बताई जा रही है—

भाग्य स्थान से नवम भाव प्रसिद्ध है। नवम स्थान को लग्न स्थानीय मानने से वास्तविक लग्न का जो अष्टम स्थान है वह भाग्य स्थान या भाग्य भाव का व्यय स्थान या व्यय भाव कहा जावेगा।

मानव वही सर्वत्र पूज्य, या सर्वत्र से सम्मान प्राप्त धनसम्पत्ति सम्पन्न मानव को लोक में भाग्यवान् पुरुष की उपाधि से आबालवद्ध परिचित होता है। इसलिये भाग्य-भाव या धर्मभाव की सभी भावों की अपेक्षा अधिक महत्त्व भी स्वाभाविक है। भाग्य जैसे परम पवित्र भाव के सुन्दरतम गुण धर्मों का व्यय करने के लिये अष्टम भाव अपने विनाश धर्म स्वभाव से प्रतिक्षण प्रवृत्त रहता है। अष्टम भाव की रन्ध्र संज्ञा भी आचार्यों ने की है। रन्ध्रान्वेषण का सही अर्थ छिद्रान्वेषण होता है। सही सज्जन भले मानव

में, जो मानवीय ऊँचे सद्गुणों से लोक प्रिय है वह दुष्ट जन या अवाञ्छनीय तत्त्वों से परेशान भी रहता है। पिशुन प्राकृतिक या छिद्रान्वेषी व्यक्ति किसी भी भले मानव में दोषारोपण करते हुए, वह उसके धवल यश से उस भलेमानव को वञ्चित करता है या अपने जन्मजात छिद्रान्वेषण रत, परनिन्दा परापवाद स्वभाव से सन्त समाज पर छींटाकसी करता है इसलिए अष्टम भाव शुभप्रद नहीं है अपि च अशुभ फलदाता है।

यहाँ एक सहज शङ्का हो जाती है कि इस प्रकार प्रत्येक भाव से द्वितीय तृतीयादि भाव धन भ्रातृ मातृ······एवं द्वादशैकादशदशमादि ······ व्ययलाभराज्यादि होने में प्रत्येक भाव का १ वाँ व्यय भाव भी दुष्ट होना चाहिए ?

शङ्का ठीक है। किन्तु आचार्यों का अनुभव सर्वोपरि है कि भाग्य जैसा जातक जीवन का सर्वोत्तम शुभ भाव का व्यय हो जाने से, निष्प्राण जीवन, किस काम का ? भाग्यहीन व्यक्ति सभी जनता के लिए कटु अर्थ की समालोचना का पात्र हो जाता है, इसलिए भाग्य भाव का व्यय भाव अर्थात् अष्टम भाव कदापि शुभ नहीं कहा जाना चाहिये। भाग्य का विनाशकारक होने से जातक का शुभाशुभत्व जीवन विचार में जन्मेष्टवश लग्न साधन तदनुसार की जन्मपत्री से लग्न का अष्टम भाव सविशेष विचारणीय कहा है।

इस ग्रन्थ में ग्रहों, राशियों और भावों के परस्पर सम्बन्धों से ही भविष्य विचार किया गया है, इसलिए भावों की अपेक्षया अष्टम जैसे दुष्ट भाव में शुभता आ जाती है जब कि अष्टमेश होते हुए वह ग्रह लग्नेश भी हो जाय। लग्नेश शब्द से त्रिकोणेश अर्थ करना चाहिये। यह अष्टमेश अशुभ फल नहीं देगा, जो त्रिकोणेश होते हुए भी अष्टमेश हो गया है।

जैसे मिथुन लग्न से "स्वयं अष्टमेश धर्म दुष्ट धर्म," तत्रापि यहाँ अष्टमेश शनि ग्रह विशेष क्रूर होने से मिथुन लग्न राशि का मानव दुःखी, दरिद्री, भाग्यहीन कहा जाना चाहिये था, किन्तु यहाँ पर शनि ग्रह नवमेश (त्रिकोणेश) होने से शनि में शुभत्व की शुभ प्राप्ति हो जाने से अष्टमेश को शुभफलद कहा जावेगा। इसी प्रकार मेष लग्न का अष्टमेश मंगल त्रिकोणेश होने से, सिंह लग्न से अष्टमेश बृहस्पति त्रिकोणेश होने से, तुला लग्न से अष्टमेश शुक्र भी त्रिकोणेश होने से, कुम्भ लग्न से अष्टमेश बुध त्रिकोणेश होने से अष्टमेशत्व दोष न होकर उक्त लग्नों के अष्टमेश ग्रहों में (मेष, सिंह, तुला, कुम्भ लग्न जातकों में) अशुभ फल नहीं होगा। इति ऐसा स्पष्टार्थः है ॥ १९ ॥

केन्द्रेश ग्रहों का प्रबल मारक ग्रह –

केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान् गुरुशुक्रयोः।
मारकत्वेऽपि च तयोः मारकस्थानसंस्थितिः ॥ १० ॥

बुधस्तदनु चन्द्रोऽपि भवेत्तदनु तद्विधः।
न रन्ध्रेशत्वदोषस्तु सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत् ॥ ११ ॥

विजया-व्याख्या—गुरु और शुक्र से केन्द्राधिपत्य नामक दोष होता है, जो बहुत अधिक बलवान् होता है और गुरु-शुक्र यदि मारकेश होते हैं तो उन्हें अन्य ग्रहों की अपेक्षा अधिक बलवान् मारक दोष का कहा गया है। तथा यदि गुरु और शुक्र मारकेश होते है (द्वितीय और सप्तम की मारक स्थान संज्ञा यहाँ की गयी है) तो और ग्रहों की अपेक्षा गुरु-शुक्र इन दो ग्रहों में मारकत्व दोष भी प्रबल होता है।

शुभ ग्रहों में गुरु शुक्र के पश्चात् बुध ग्रह और बुध ग्रह के बाद चन्द्रमा में भी उक्त प्रबल दोष होते हैं।

अष्टम भाव का मालिक जो कोई भी ग्रह होता है, वह भी दोष कारक (अनिष्ट) फलदायक होता है। जो ग्रह दो राशियों के मालिक होते हैं अर्थात् मंगल-बुध-बृहस्पति-शुक्र और शनि ग्रहों में हीं अष्टमेश होने का दुष्टफल सविशेष होता है तो सूर्य और चन्द्रमा इन दो ग्रहों में अष्टमेश होने से पूर्वोक्त दोष नहीं कहा गया है। शुभ ग्रहों में केन्द्रेशत्व आने से उनमें दोष समझा गया है। सम्मानित व्यक्ति का मात्र अल्प अपराध भी महान् हो जाता हैं। अपकीर्ति ही अधिक हो जाती है। इसी प्रकार ग्रहों में "सूरिर्दानवपूजितश्च सचिवौ" तथा "विप्राधीशौ भार्गवेज्यौ" इत्यादि वराहाचार्यादि के कथन से गुरु और शुक्र ग्रहमण्डल में मन्त्रित्व पद पर या सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण वर्ग के अधिपति होने से इन दोनों में केन्द्राधिपत्य दोष कहा जाना समीचीन है। जैसे मिथुन लग्न से गुरु जैसा सर्वश्रेष्ठ ग्रह सप्तमदशमेश हो रहा है, प्रबल है, किन्तु केन्द्रेशजन्य शुभफलदायकता का माप त्रिकोणेशत्व की प्राप्ति न होने से गुरु ग्रह में सप्तमेशत्व दोष अर्थात मारकत्व दोष प्रबल कहा जावेगा।

तथैव मेष लग्न से शुक्र में केन्द्रेशत्व या मारकेशत्व के साथ द्वितीय भावाधीत्व अर्थात् दोनों तरफ से मारकत्व की प्राप्ति होने से शुक्र ग्रह में उभयतः मारक धर्म की प्राप्ति से उसका केन्द्रेशत्व सम्बन्ध अशुभाय ही विशेष कहा जाता है।

इसी प्रकार कर्क लग्न से गुरु ग्रह नवमेश होने से विशेष शुभ होगा तो त्रिषडाया-धीशत्वेन उसकी शुभता भी चिन्तनीय तथा इसी कर्क लग्न से शुक्र ग्रह का केन्द्रेशत्व बल में त्रिषडायेशत्व का सम्बन्ध भी अशुभ फल सूचक ही कहा जावेगा।

धनु एवं मकर लग्नों से चन्द्रमा और सूर्य दोनों में अष्टमेशत्व दोष नहीं माना आवेगा यतः अष्टमेश के अतिरिक्त और कोई दूसरा भावाधीश ग्रह से यहाँ सम्बन्ध नहीं है या सम्बन्धाभाव ही है, इसलिए सूर्यचन्द्रमा में अष्टमेशत्व होने से सापराधता (दोषसत्ता) नहीं कही जावेगी।

यद्यपि बुध शुभ ग्रह है, तथापि सर्वतो भावेन बुध ग्रह में शुभता तभी है जब वह स्वतन्त्र किसी राशि पर स्थित हो "बुध सूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ" बुध ग्रह में नपुंसकता की उपलब्धि से उसमें भी केन्द्राधिपत्य या मारकत्व दोष जो स्वभावतः होने चाहिए वह बुध की पूर्ण शुभता में ही होंगे। ग्रह साहचर्य वश शुभाशुभ सम्बन्ध से बुध ग्रह में उक्त केन्द्राधिपत्य दोष की सत्ता की विद्यमानता के बावजूद, वह दोष गुरु शुक्र के केन्द्राधिपत्य दोष से न्यून कहा जाना युक्ति युक्त होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

पापग्रहों से केन्द्राधिपत्यादि विचार—

कुजस्य कर्मनेतृत्वप्रयुक्ता या शुभकारिता।
त्रिकोणस्यापि नेतृत्वे न कर्मेशत्वमात्रतः ॥ १२ ॥

विजया-व्याख्या—पापग्रहों से केन्द्रेशत्व के साथ अन्य भावाधीशतावश शुभाशुभ फल विचार—

"कुजस्य" इस शब्द से मङ्गलस्य अर्थात् मात्र मङ्गल ग्रह अर्थ करना उचित नहीं, क्योंकि पूर्व श्लोक ७ में शुभ और पापग्रहों के सम्बन्धवश शुभाशुभ फल की बातें कह दी गयी हैं। इसलिए यहाँ पर "कुत्सितं जायते यस्मात्स कुजः निरूपितः" कुत्सित से अर्थात् पाप से उत्पन्न पापी, ऐसा सही अर्थ करते हुए ग्रहों में ७ ग्रह मण्डल में शुभ और पाप ग्रहों की चर्चा जो पूर्व में हो चुकी है, उसी आधार से यहाँ "कुज" शब्द से सभी पापी ग्रहों का बोध तथा कर्म शब्द से केवल दशम ही न समझकर केन्द्र भी समझना उचित होगा। तब पाप ग्रह को जो कर्मनेतृता अर्थात् केन्द्रेशत्व धर्म से पाप ग्रह में शुभता कही गयी है, ऐसा आंशिक अर्थ नहीं समझना चाहिये। ऐसी स्थिति में स्पष्ट अर्थ यही होता है कि केवल केन्द्रेश होने से पाप ग्रह में शुभता नहीं आ सकती। स्वभावतः वह पाप ग्रह, जो केन्द्राधिपति होकर त्रिकोणाधिपति अर्थात् लग्न पञ्चम और नवम में किसी एक का अधिपति होगा तभी उस पाप ग्रह में शुभता आ सकती है। तात्पर्य हुआ कि केन्द्राधीश होने से पापग्रहों में पापत्व का दोष तभी सम्भव होगी या मिट सकेगा, जब कि वह ग्रह त्रिकोणाधीश भी होगा। केवल केन्द्रेश होने से पाप ग्रह में शुभता नहीं आ सकेगी और केन्द्राधीश होकर यदि पापग्रह त्रिषडायाधीश आदि व्ययाद्वितीयेशादि भी होगा तो वह ग्रह विशेष पापी ही हो जावेगा। मात्र केन्द्रेश होते हुए त्रिकोणेशत्व की प्राप्ति से ही पाप ग्रह अपने पापत्व स्वभाव से मुक्त होकर शुभ फलदान सामर्थ्यवान् होने से वह शुभ फलद हो जाता है ॥ १२ ॥

राहु-केतुग्रहों से—

यद्यद्भावगतौ वापि यद्यद्भावेश संयुतौ।
तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेताम् तमोग्रहौ ॥ १३ ॥

इत्युडायप्रदीपे संज्ञाध्यायः प्रथमः

विजया-व्याख्या—राहु-केतु ये दोनों ग्रह किसी भी राशि के अधीश ग्रह नहीं हैं तो कैसे शुभाशुभ देखा जाय ?

सूर्यादिक ७ सात ग्रहों की स्वाभाविक शुभाशुभता और भाव, भावेश ग्रहों के सम्बन्ध से प्राप्त शुभाशुभता का विचार पूर्व में किया गया है। उक्त पद्य में राहु और केतु इन दोनों ग्रहों के भी शुभाशुभत्व पर विचार किया जा रहा है।

स्वच्छ आकाश में सूर्यादिक सातों ग्रहों को, खुली आँखों से भी देख सकते हैं, क्योंकि आकाश में अपनी-अपनी कक्षाओं में उनके ग्रह विम्ब अपनी विभिन्न गतियों से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व-अधः गतियों से जैसे गमनशील होते हैं, वैसे राहु और केतु का कोई दृश्य विम्ब नहीं होते हुए भी समय-समय पर राहु उन महान् प्रताप प्रकाशपुञ्ज सूर्य और चन्द्रमा को भी विमर्दन कर देते हैं और भूपृष्ठ-अभिप्रायिक जनसमाज के लिए सूर्य-चन्द्र को आच्छादित कर देते हैं, इसलिए राहु और केतु ये दोनों अधिक पापग्रह कहे जाते हैं।

यद्यपि नाडी क्रान्ति इन दोनों वृत्तों का एक केन्द्राभिप्रायिक एक धरातल में दो सम्पात होते हैं। प्रथम सम्पात से द्वितीय सम्पात, $\frac{३६०^\circ}{२} = १८०^\circ$ अंश = ६ राशि पर होने से प्रथम सम्पात का नाम राहु (अन्धकार मय) और द्वितीय सम्पात का नाम केतु कहा जाता है। इस प्रकार राहु और केतु दोनों प्रबल पापग्रह कहे जाते हैं। पौराणिक कथानकों के अनुसार राहु एक मूर्त्त रूप पुरुष जिसने अमृत की चोरी की है और इस चौर्य कर्म रूपापराध के लिए उसका शिरश्च्छेदन किया गया। चूंकि उसने अमृत पान चोरी से भी किया था तो उसमें अमृतपान का स्वाभाविक अमरत्व धर्म आने से वह मृत नहीं हुआ इस लिए उसका शिरोभाग राहु और गले से नीचे का शरीर केतु नाम से जाना गया है। अथवा राहु एक सर्पाकार प्राणी ग्रह है, जिसके शिरोभाग का नाम राहु है तो शिरोभाग से ६ राशि = १८०° की दूरी पर संस्थित विभाग जिसकी पूछ संज्ञा है उसे ही केतु कहा गया है। ग्रहगोल दृष्टि से एक धरातलीय दो वृत्तों का प्रथम सम्पात विन्दु राहु है और द्वितीय सम्पात विन्दु अर्थात् अन्धकार पुञ्जीय स्थान का नाम केतु है। इस लिये ये दोनों पातग्रह है—जो पापी ग्रह भी कहे जाते हैं।

जब इन पात ग्रहों की कोई भी राशि नहीं है तो भी कुण्डली में लग्नादि द्वादश भावों में ६ भावों (लग्न से षष्ठ तक) का अधिकारी राहु और सप्तम से १२ वें के अन्त तक ६ भावों में केतु ग्रह का साम्राज्य कहा जाता है तो लग्नादि १२ भावों में राहु जिस भाव में बैठा है और केतु जिस भाव में बैठा है, उस भावस्थ राशि के स्वामी या उस भावस्थ ग्रह का सहचारी होने से राहु और केतु इन दोनों ग्रहों का शुभाशुभ सम्बन्ध विचार भी पूर्व कथित परम्परा से करते हुए राहु-केतु की विंशोत्तरी आदि

दशाओं में शुभाशुभ फल विचार यथोक्त रीति से करना चाहिये। यही आचार्य पराशर या लघुपाराशरी ग्रन्थ रचयिता पराशर ऋषिमण्डल का अभिप्राय सुस्पष्ट हो रहा है।

तथा "अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः"

ग्रन्थ विस्तार भय से अधिक व्याख्यान जो अनावश्यक है और लिखा भी नहीं जा सकता है, उसे लिखने की भी आवश्यकता नहीं है। शास्त्राध्ययन से बुद्धिमान विद्यार्थी की बुद्धि प्रस्फुटित हो जाने से उसे ध्यान में रखना भी चाहिये कि अकेले जिस भाव में राहु-केतु रहते हैं, उस भाव की हानि करना उनका स्वभाव है, या धर्म है, जो सूर्य-चन्द्रमा जैसे महान् ग्रह विम्ब विभूतियों को अपने प्रभाव से लुप्त कर सारे जगत में अन्धकार कर ही देते हैं तो साधारण प्राणी के लिए उनका शुभद होना सम्भव नहीं होता है ॥ १३ ॥

पर्वतीय केदारदत्त जोशी कृत लघुपाराशरी ग्रन्थ उडुदाय प्रदीप की प्रथमाध्याय की विजया व्याख्या सुसम्पन्न।

अथ योगाध्यायः

सम्बन्धवश योग विचार—

केन्द्रत्रिकोणपतयः सम्बन्धेन परस्परम् ।
इतरैरप्रसक्ताश्चेद्विशेषफलदायकाः ॥ १ ॥

केन्द्रेश ग्रहों की विशेष फलदानशीलता कैसे ?

विजया-व्याख्या—केन्द्र स्थान १,४,७,१० और त्रिकोण स्थान १,५,९ इस प्रकार केन्द्र और त्रिकोण स्थानों में स्थित राशियों के अधिपति ग्रहों के परस्पर के सम्बन्धों में, यदि अन्य भावेशों में तृतीय-षष्ठ और एकादशेश ग्रहों से सम्बन्ध रहित (अप्रसक्त) होंगे तो वे विशेष शुभफल देते हैं। अर्थात् इस प्रकार की जातक की जन्म-कुण्डली में उक्त केन्द्र त्रिकोणेश ग्रहों के सम्बन्धों से विशेष भाग्योदय की शुभ सूचना सम्बन्धकारक ग्रहों की दशान्तरदशादि के समयों में होती ही है।

यहाँ पर केन्द्र त्रिकोण से १।४।७।१०+९।५=६, भाव। यदि भावों को कहा जाय तो शेष द्वितीय-तृतीय-षष्ठाष्टम-एकादश और द्वादश एवं अन्य ६ भावों से भी उक्त ६ भावों का किसी रूप में भी सम्बन्ध हो सकता है तो केवल ३, ६ और ११ भावों के साथ का ही सम्बन्धाभाव होना चाहिए। इतरैः से उक्त तीन ही भाव क्यों लिए जाय ? ऐसी शङ्का स्वाभाविक होती है ? तो आचार्य ने पूर्व अध्याय श्लोक ९ में द्वितीय द्वादश भावों के सम्बन्धों की पृथक् चर्चा के साथ अष्टम भाव के सम्बन्धों की भी चर्चा श्लोक १० में कर दी है। इस लिए यहाँ पर "इतरैः" शब्द से तृतीय-षष्ठैकादश भावों का सम्बन्ध राहित्य केन्द्र त्रिकोणाधीश ग्रहों के सम्बन्धों से ग्रहयोग कृत भाग्ययोग के निर्माण की सूचना, सम्बन्धकारक ग्रहों की दशादि समयों में ही होगी, यही आचार्यों का अभिप्रेताशय है।

जैसे उदाहरण से—पूर्व दर्शित इस जन्म कुण्डली में केन्द्रेश बृहस्पति का त्रिकोणेश मंगल ग्रह के साथ ऊँचा सम्बन्ध है मंगल की दशा में गुरु की अन्तर दशा या गुरु की दशा में मंगल की अन्तर्दशादि में भाग्योदय योग होगा ही तथा किसी भी ग्रह की दशान्तर्दशादि में भी, मंगल गुरु की दशान्तर्दशादि सूक्ष्म प्राणदशा समयों में जातक को हर्ष होगा ही ।।१।।

केन्द्र और त्रिकोण के अधिपति दो ग्रहों के सम्बन्ध से—

केन्द्रत्रिकोण नेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम् ।
सम्बन्धमात्राद्बलिनौ भवेतां योगकारकौ ॥ २ ॥

योगकारक केन्द्रत्रिकोणेश ग्रहों का बल—

विजया-व्याख्या—केन्द्र और त्रिकोण भावों के स्वामियों में परस्पर के सम्बन्ध मात्र हों शुभ फल प्रदान करने के सामर्थ्य होती ही है भले ही उक्त सम्बन्ध कारक ग्रहों में तृतीय षष्ठैकादशादि भावाधीशतावशेन अशुभ फल दातृत्व दोष (अशुभ फलदान सामर्थ्य) भी क्यों न हो जाय। तब भी शुभफल आ जाता है।

पहिले श्लोक से, त्रिषडायाधीशत्व दोष से अशुभफल की विवेचना की जा चुकी है किन्तु यहाँ पर दोष की विद्यमनता के बावजूद केन्द्र त्रिकोणाधीशों की अशुभ सम्बन्धों के अस्तित्व के बावजूद शुभफलदान सामर्थ्य की सत्ता की विद्यमानता कही जा रही है ऐसी स्थिति में संशय स्वाभाविक होने से संयुक्तिक संशय का निराकरण भी किया जा रहा है।

लग्न-चतुर्थ-सप्तम-दशम प्रसिद्ध ४ केन्द्र स्थान हैं। तथा पञ्चम नवम (या विचारावसर पर लग्न भी) ये त्रिकोण स्थान कहे गए हैं। इस प्रकार केन्द्राधीश ग्रह संख्या = ४ होती है एवं त्रिकोणाधीश ग्रह संख्या = २ एवं कुल संख्या = ६ होती है। तथा त्रिषडायाधीशों की संख्या = ३ होगी। इस लिए परिष्कार करने से—

१—लग्नेश पञ्चमेश के सम्बन्ध से योग संख्या = १

२—चतुर्थेश पञ्चमेश के सम्बन्ध से योग संख्या = १

३—सप्तमेश पञ्चमेश के सम्बन्ध से योग संख्या = १

४—दशमेश पञ्चमेश के सम्बन्ध से योग संख्या = १

इसी प्रकार

लग्नेश चतुर्थेश सप्तमेश दशमेशों में प्रत्येक केन्द्र का मात्र नवमेश के सम्बन्ध से भी योग संख्या = ४, इसी प्रकार शुभ स्थान सम्बन्धेन कुल योग संख्या = ८ होती है। परस्पर उत्तरोत्तर योग प्राबल्य से लग्नेश गुण = १, चतुर्थेश गुण संख्या = २, सप्तमेश गुण संख्या = ३ और दशमेश गुणसंख्या = ४ तथैव पञ्चमेश गुणसंख्या = २, एवं नवमेश गुणसंख्या = ४, तथैव तृतीयेश गुणसंख्या = १, षष्ठेश गुणसंख्या = २, एकादशेश गुणा या अवगुण दोष संख्या = ४, ऐसी पराशर सम्प्रदाय की इस प्रकार की कल्पना से, यदि लग्नेश पञ्चमेश के योग के सम्बन्ध से भाग्य योग संख्या १ + २ = ३ होती है। तब यदि द्वितीयेश दोष संख्या = १, षष्ठेश दोष संख्या = २, अशुभ योग = ३, इसी प्रकार लग्नेश चतुर्थेश सम्बन्धों १ + २ = ३ में तृतीयेश सम्बन्ध = १ को न्यून करने से भाग्य योग २ शेष रहेगा। यथा षष्ठेश सम्बन्ध से उक्त भाग्ययोग ३—३ = शून्य में आवेगा किन्तु लग्नेश पञ्चमेश के भाग्ययोग संख्या ३, एकादशेश सम्बन्ध ३ = भाग्ययोगाभाव तथा चतुर्थेश पञ्चमेश की भाग्ययोग संख्या २ + २ = ४ में तृतीयेश षष्ठेश की अशुभ सूचकाङ्क संख्या ३, कम करने से भाग्ययोगावशेष १ बचने से भाग्य योगावशेष से दोष युक्तावपि स्वयम् से भाग्य योगावशेष से भाग्ययोग होना ही।

एवं दशमेश नवमेश की भाग्य योग संख्या ८ में तृतीयषष्ठैकाधीश सभी के अशुभ सम्बन्धों की संख्या ६ को कम करने से २ शेष भाग्य योगावशेष होने से—

"सम्बन्धमात्राद्बलिनौ" कहना युक्ति युक्त सिद्ध होता है ॥ २ ॥

पुनः भाग्ययोग कारक ग्रह स्थिति —

निवसेतां व्यत्ययेन तावुभौ धर्मकर्मणोः ।
एकत्रान्यतरो वाऽपि वसेच्चेद्योगकारकौ ॥ ३ ॥

नवमेश दशमेश ग्रहों से सम्बन्ध के साथ योगकारिता—

विजया·व्याख्या—नवमेश और दशमेश ये दोनों ग्रह एक ही स्थान में एक जगह या दोनों अन्यत्र भिन्न-भिन्न स्थानों में बैठे हों तो योगकारक अर्थात् भाग्ययोग कारक होते हैं ।

"धर्म कर्मणोः" से सीधा अर्थ नवम और दशम भावों के स्वामी ग्रह, परस्पर एक दूसरे के घर में अर्थात् नवमेश ग्रह दशम की राशि में एवं दशमेश ग्रह नवम की राशि में बैठा हो, यह एक योग, नवमेश और दशमेश दोनों एक ही स्थान में हों, यह दूसरा योग, अथवा नवमेश दशमेश की राशि में हो और उस पर दशमेश की दृष्टि हो, तीसरा योग, या दोनों परस्पर एक दूसरे को देखते हों तो यह चौथा योग भाग्यसूचक होता है । अथवा, धर्म शब्द से त्रिकोण और कर्म शब्द से दशम ही न कह कर केन्द्र भी कहा जाय तो, केन्द्रेश त्रिकोण में, एवं त्रिकोशेश ग्रह की स्थिति केन्द्रस्थ हो, तो एक प्रकार का राजयोग होगा ।

अथवा, केन्द्रेश और त्रिकोणेश दोनों केन्द्र या त्रिकोण में संस्थित हों तो द्वितीय योग, अथवा केन्द्रेश त्रिकोणेश में एवं त्रिकोणेश केन्द्र में स्थित हो तो तृतीय योग होता है उक्त सभी स्थितियों में भी भाग्ययोग ही होता है ॥ ३ ॥

सुन्दर भाग्य योग—

त्रिकोणाधिपयोर्मध्ये सम्बन्धो येन केनचित् ।
बलिनः केन्द्रनाथस्य भवेद्यदि सुयोगकृत् ॥ ४ ॥

बलवान् केन्द्रेश का त्रिकोणेश से सम्बन्ध—

विजया व्याख्या—पञ्चमनवमभावाधीश ग्रहों में किसी एक ग्रह के साथ यदि बलवान् लग्न चतुर्थसप्तम और दशमेशों में किसी एक का यदि सम्बन्ध (जो पूर्व में बता चुके हैं), हो तो ऐसी स्थिति में सुयोग कारक ग्रहस्थिति कही जाती है । ऐसी जन्म कुण्डली के जातक को विशेष भाग्यवान् कहा जावेगा ॥ ४ ॥

जैसे प्रकृतोदाहरण कुण्डली में चतुर्थेश बृहस्पति, नवम में सूर्य के घर में, एवं नवमेश सूर्य, बृहस्पति के घर में, चतुर्थ में (मंगल के नवांश में) बैठा है, उत्तम भाग्ययोग प्राप्ति की जब जब स्थिति समीप में और निश्चयात्मक अनुकूल आती है तो अवाञ्छनीय तत्वों से अनिर्वचनीय बाधाएँ क्यों होती हैं ? पाठक मनन करें विचार करें ?

योककारक ग्रहदशादि समय में विचार—

दशास्वपि भवेद्योगः प्रायशो योगकारिणोः ।
दशाद्वयीमध्यगतस्तद्युक् शुभकारिणाम् ।। ५ ।।

सम्बन्धरहित शुभोदयकारक ग्रह स्थिति में भी शुभफल—

विजया-व्याख्या—पूर्वकथित योगकारक ग्रहास्थितियों में यदि सम्बन्धरहित शुभोदय कारक ग्रह की दशा में भी, यदि योगकारक ग्रह की अन्तर दशा और दूसरे ग्रह की प्रत्यन्तरादि दशा में भी शुभ योग से शुभ फल की प्राप्ति हो जाती है ।

अर्थात् शुभ ग्रह की दशा में ही, योगकारक अन्य ग्रहों की अन्तरदशा या प्रत्यन्तर दशाओं में ही शुभ फल की प्राप्ति होती है ।। ५ ।।

पापी ग्रहों की अन्तर्दशादि में योगज फल प्राप्ति—

योगकारकसम्बन्धात्पापिनोऽपि ग्रहाः स्वतः ।
तत्तद्भुक्त्यनुसारेण दिशेयुर्योगजं फलम् ।। ६ ।।

विजया-व्याख्या—अशुभ ग्रह का योगकारक ग्रह सम्बन्धवश शुभ फल बताया जा रहा है—

प्रायः योगकारक दो ग्रहों की दशाओं में अर्थात् एक ग्रह की दशा और दूसरे ग्रह की अन्तर्दशा में तथा योगकारक ग्रह सम्बन्धरहित शुभकारक ग्रह की दशा में, यहाँ पर दशा में (का अर्थ अन्तर्दशा समझ कर) भाग्य योग की प्राप्ति होती हैं । तात्पर्य है कि किसी योगकारी ग्रह की दशा में उसके सम्बन्धी योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा हो और इन दोनों से सम्बन्ध रहित जो शुभ ग्रह हो उस शुभ ग्रह की प्रत्यन्तरादि समयों में निश्चित रूप से शुभ फल की प्राप्ति होती है ।। ६ ।।

सर्वोपरि राजयोग—

केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरेकत्वे योगकारकौ ।
अन्यत्रिकोणपतिना सम्बन्धो यदि किं परम् ।। ७ ।।

विजया-व्याख्या—उक्त राजयोगों में भी सर्वोत्कृष्ट राजयोग बताया जा रहा है—

जिस स्थिति में केन्द्र और त्रिकोण का स्वामी एक ही ग्रह होता है, और ऐसे प्रबल योग कारक ग्रह के साथ किसी अन्य त्रिकोणेश ग्रह का सम्बन्ध हो जाता है, तो इससे बड़ा और कोई भाग्य नहीं होता है। अथवा केन्द्रेश एक ही ग्रह के साथ त्रिकोणेश अन्य किसी ग्रह का सम्बन्ध होता है तो भी उत्तम भाग्ययोग होता है। ऐसे योग को सर्वोत्कृष्ट भाग्ययोग कहा जाता है।

जैसे वृष लग्न से नवमेश दशमेश शनियोग कारक ग्रह दशादि में पञ्चमेश बुध ग्रह ग्रह की अन्तरदशादि सम्बन्ध से उत्तम शुभोदय योग होगा।

कर्क लग्न से दशम पञ्चमाधीश मंगल ग्रहदशा के साथ, नवमाधीश वृहस्पति की अन्तरदशामें उत्तम भाग्ययोग से परम राजयोग की प्राप्ति कही जावेगी।

सिंह लग्न में चतुर्थ नवमाधीश मंगल की दशादि के साथ पञ्चमेश गुरु की अन्तरदशादि में, उत्तम भाग्ययोग प्राप्ति समय कहा जावेगा, यतः यहाँ पर गुरु अष्टमेश भी है तो भी भाग्य योगाङ्कों की संख्या वर्द्धमान ही होती है।

तुला लग्न से चतुर्थेश पञ्चमेश शनि के साथ नवमेश बुध के सम्बन्ध से उत्कृष्ट राजयोग होगा यदि बुध में व्ययेशत्व सम्बन्ध भी विद्यमान है तो भी अधिक राजयोगावशेष से राजयोग उत्तम होगा।

मकर लग्न से दशमेश पञ्चमेश शुक्र के साथ बुध ग्रह नवमेश के सम्बन्ध से राजयोग प्रबल होता है।

कुम्भ लग्न के केन्द्रत्रिकोणेश शुक्र की दशादि के साथ पञ्चमेश बुध की अन्तरदशादिकों का सम्बन्ध भी उत्तम भाग्ययोग सूचक होता है।

मेष लग्न से केन्द्रेश चन्द्रमा के साथ त्रिकोणेश सूर्य का सम्बन्ध "केन्द्रत्रिकोणशेयो रेकत्वे" तो नहीं है किन्तु केन्द्रेश त्रिकोणेशत्व धर्म निष्ठदोनों ग्रहों की परस्पर की दशा और अन्तरादि दशाओं में मानव को राजयोग की प्राप्ति होगी ही। यहाँ पर भले ही केन्द्रेश ही त्रिकोणेश नहीं भी तो भी भाग्ययोग की प्राप्ति होगी ॥ ७ ॥

राहु और केतु ग्रहों से विचार—

यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमो ग्रहौ।
नाथेनान्यतरेणाऽपि सम्बन्धाद्योगकारकौ ॥ ८ ॥

विजया व्याख्या—स्थिति समय पर राहु और केतु ग्रहों से भी योग कारिता बताई जा रही है—

पूर्व श्लोकों में जिस-जिस भाव में राहु और केतु स्थित वे उस भावेश या भाव से ग्रह सम्बन्ध से उनका शुभाशुभ फल कहा गया है। तथैव राहु और केतु ग्रहो की स्थिति भी केन्द्र और त्रिकोण में भी हो सकती है तो केन्द्रस्थ या त्रिकोणास्थ राहु और केतु का केन्द्रेश और त्रिकोणेश के ग्रह के साथ सम्बन्ध होने से राहु और केतु की

अन्तरादि दशा समयों में •योग प्राप्ति होती है। यहाँ पर भी केन्द्रस्थ राहु त्रिकोणेश के साथ हों, या त्रिकोणेशस्थ राहु केतु, केन्द्रेश के साथ बैठे हों तो भी भाग्य योग की उपलब्धि अवश्य होती है ॥ ८ ॥

केन्द्रत्रिकोणेश का अष्टमएकादशेश से सम्बन्ध —

धर्मकर्माधिनेतारौ रन्ध्रलाभाधिपौ यदि।
तयोः सम्बन्धमात्रेण न योगं लभते नरः ॥ ९ ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः

विजया-व्याख्या—केन्द्रत्रिकोणेश ग्रह का अष्टम-एकादशेश से सम्बन्धित होने से, योग की सत्ता मात्र कहने की होगी फलदान सामर्थ्याभाव होता है—

धर्म अर्थात् नवम, कर्म अर्थात् दशम अतः नवम और दशम के स्वामी यदि रन्ध्र = अष्टम, लाभ = एकादश भावों के भी स्वामी हों तो इनके सम्बन्ध मात्र से योग अर्थात् योग की सत्ता मात्र से भाग्ययोग की प्राप्ति नहीं होती है।

यहाँ पर मननशील छात्र को स्वतः समझ लेना चाहिए कि नवमेश और दशमेश जो ग्रह, होगा वह अष्टमैकादशाधीश नहीं होगा। इसलिए धर्म शब्द से त्रिकोण और कर्म शब्द से केन्द्र, यहाँ पर भी क्रमशः उक्त त्रिकोणेश और केन्द्रेश का अर्थ समझकर केन्द्रत्रिकोणाधीश और अष्टमएकादशाधीश ग्रहों के परस्पर के सम्बन्ध से जातक को भाग्ययोग की प्राप्ति नहीं हो सकती।

यदि नवमेश ग्रह अष्टमेश हो जाय और दशमेश भी लाभेश हो जाय तो भाग्ययोग की हानि नहीं होगी। इसी प्रकार चतुर्थेश की एकादशेशता और पञ्चमेश की अष्टमेशता होने पर भी भाग्ययोग की हानि नहीं कही जावेगी, क्योंकि नवमदशमाधीश के सम्बन्धों में त्रिषडायाधीशों के सम्बन्ध होने पर भी भाग्ययोगावशेषता ही रहने से भाग्ययोग की आंशिक प्राप्ति होती ही है।

इसलिए उक्त श्लोक का सीधा तात्पर्य यही हुआ कि केन्द्रेश त्रिकोणेश के सम्बन्धों में अष्टमेश लाभेश का सम्बन्ध से भाग्ययोग नहीं होता ॥ ९ ॥

पर्वतीय केदारदत्त जोशी कृत लघुपाराशरी ग्रन्थ द्वितीयाध्याय की
विजया-व्याख्या सम्पन्न

अथायुर्दायाध्यायः

आयु विचार किस भाव से—

अष्टमं ह्यायुषः स्थानमष्टमादष्टमं च यत् ।
तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते ॥ १ ॥

विजया-व्याख्या—आयु योग यदि दीर्घायु का है, तभी ग्रन्थोक्त विषयों का मानव जीवन में उपयोग किया जावेगा, अत एव आयुस्थान से प्रथम आयुविचार आवश्यक है—

लग्नादि १२ द्वादश भावों में अष्टम भाव को आयु भाव कहा गया है, इस लिए आयु स्थान अष्टम भाव होता है। अष्टम भाव से क्रम गणनया अष्टम स्थान तृतीय भाव होता है, अत एव लग्न से अष्टम (१) प्रथम आयु स्थान, और (२) अष्टम से अष्टम तृतीय स्थान यह द्वितीय, ये आयु स्थान कहे गए हैं।

आयु स्थान को लग्न मान कर लग्नादि द्वादश भावों की गणना से लग्न भाव से अष्टम आयु स्थान का बारहवाँ सप्तम, एवं अष्टम से अष्टम द्वितीय आयु स्थान, जो तृतीय स्थान का व्यय स्थान अर्थात् लग्न से द्वितीय स्थान इस प्रकार दो मारक स्थान (सप्तम और द्वितीय) सिद्ध होते हैं।

आयु भाव जैसे विशेष महत्त्व भाव का व्यय करने वाला, विनाश कारक व्यय भाव होने से सप्तम और द्वितीय भाव को मारक स्थान और सप्तमेश द्वितीयेश ग्रहों को मारक ग्रह कहते हुए मारक ग्रह की दशा अन्तर प्रत्यन्तरादि में जातक की मृत्यु या मृत्युभय आदि का संकेत किया गया है।

उक्त दो मारक स्थानों से आयु विचार में स्वतः विकल्प कहते हुये आचार्य गण स्वयं स्पष्ट करते हैं कि

"तत्राप्याद्यव्ययस्थानाद्द्वितीयं बलवत्तरम्" ॥ १३ ॥

तृतीय स्थान पराक्रम का है। बहुत बड़े पराक्रमी पुरुष को पराक्रम हानि असोढव्य होती है साधारण स्वाभाविक विनाश मृत्युभय सबसे बड़ा भय होने से दोनों मारकेश स्थानों (सप्तम, द्वितीय) में द्वितीय व्यय स्थान = द्वितीयेश ग्रह प्रबल मारक होता है। यद्यपि आयु स्थान अष्टम का व्यय भाव सप्तम जो स्त्री भाव है, ऐसा सप्तमेश ग्रह भी आयुष्यक्षय कारक होने से मारकेश कहना समुचित है किन्तु पराक्रम का क्षय, आयुक्षय का अपेक्षा अधिक क्षति कारक होता है इस लिए द्वितीयेश ग्रह को प्रबल मारक कहा जाता है।

मारक ग्रह दशा से विचार करते हुये ध्यान देना चाहिए कि मारक ग्रह की दशा, जीवन के बाल-कुमार और युवा-वृद्धावस्था में कब प्रारम्भ हो रही है। कभी-कभी

बालक की गर्भस्थ स्थिति में और जन्म के बाल्य जीवन में ही मारक ग्रह दशा (द्वितीयेश, या सप्तमेश) प्रारम्भ हो जाती है। तात्पर्य यह कि दीर्घजीवन की प्राप्ति कारक ग्रह योगों की विद्यमानता के बावजूद यदि मारक ग्रह की दशा का भोग बाल्य जीवन में ही प्राप्त हो रहा हो तो ऐसी स्थिति में गम्भीरता से जातक का आयु योग ही प्रथमत: विचारणीय हो जाता है। ऐसी अनेक प्रकार की विषम स्थितियों में ज्योतिर्विद् वर्ग को को काफी सूझ बूझ से फलित ज्यौतिष का सदुपयोग करना चाहिए।

अत एव किसी जातक के जीवन का शुभाशुभ विचार के पूर्व उस जातक की आयु कितनी है ? यह ज्ञान परमावश्यक होगा।

फलित ज्यौतिष के सभी ग्रन्थों में आयु का विचार हुआ है। तब भी जैमिनि सूत्र ग्रन्थ का आयु विचार सर्वोपरि है, और सूक्ष्म भी होते हुए घटित भी देखा गया है। अत एव यहाँ पर संक्षेप से आयु विचार का जैमिनि सूत्र ग्रन्थ परम्परानुसार, विचार दिया जाना आवश्यक हो जाने से ग्रन्थानुसार सम्बन्धित आयु का यथोचित विचार यहाँ पर दिया जा रहा है।

लघुपाराशरी ग्रन्थानुसार विंशोत्तरी दशा का मान १२० वर्ष कहा गया है। इसलिए कलियुग में मानव आयु का मान अधिक से अधिक १२० वर्ष कहा गया है। वराहाचार्य ने अपने बृहज्जातक ग्रन्थ में मनुष्य की परम आयु का मान १२० वर्ष और ५ दिन कहा है।

फलित ज्यौ के ग्रन्थानुशीलन से ८० वर्ष से १२० तक की दीर्घायु और ४० से ८० वर्ष तक को मध्यमायु और जन्म से ४० वर्ष तक अल्पायु माना गया है।

अनेक युक्तियों से आयु के ३ खण्डों में ३२, ३६ और ४० वर्ष की कल्पना से, ६४, ७२ और ८० वर्ष तक को मध्यमायु एवं ९६, १०८, और १२० वर्ष तक में दीर्घायु का मान माना गया है।

इस प्रकार अल्पायुमान ३२, ३६, ४०, मध्यमायु मान ६४, ७२, ८० और दीर्घायु का मान ९६, १०८ और १२० वर्ष तक समझना चाहिए।

आचार्य जैमिनि के अनुसार, आयु विचार के लिये—

१—लग्नेश और अष्टमेश लग्न से सप्तम तक यदि चन्द्रमा है तो २—लग्न और चन्द्रमा से अन्यथा— २—शनि और चन्द्रमा से ३—लग्न और होरा लग्न से	मुख्यतया उक्त तीन प्रकार से आयु का विचार करना चाहिए।

लग्नेश और अष्टमेश दोनों चर राशि में अथवा एक स्थिर और दूसरा द्विस्वभाव में होने से दीर्घायु होती है।

दोनों द्विस्वभाव में अथवा लग्नेश या अष्टमेश में एक चर राशि में दूसरा स्थिर में हो तो मध्यमायु होती है।

लग्नेश अष्टमेश दोनों स्थिर राशियों में अथवा दोनों में एक चर राशिगत और दूसरा द्विस्वभाव राशि में हो तो भी अल्पायु होती है। नीचे के चक्र से स्पष्ट हो रहा है।

दीर्घायु	मध्यमायु	अल्पायु	आयु विचाराश्रयी दो ग्रह
चर + चर	चर + स्थिर	चर + द्विस्वभाव	आयु विचाराश्रयी दो ग्रह
स्थिर + द्विस्वभाव	स्थिर + चर	स्थिर + स्थिर	आयु विचाराश्रयी दो ग्रह
स्थिर + द्विस्वभाव	द्विस्वभार + द्विस्वभाव	द्विस्वभाव + चर	आयु विचाराश्रयी-भूत जो दो ग्रह

मुख्यतः—(१) लग्नेश और अष्टमेश से।

(२) लग्न राशि और चन्द्र राशि से।

अथवा शनि राशि या चन्द्र राशि से।

(३) लग्न और होरा लग्न से।

इस प्रकार इन तीनों से एक ही प्रकार की प्राप्त आयु प्रमाणित कही गई है।

मान लीजिए तीनो से दीर्घापु योग की प्राप्ति हो रही है, तो दीर्घापु योग ८०–१२०, वर्ष तक की आयु कही जा सकेगी। मध्यम खण्डीय दीर्घापु ७२–१०८, एवं लघु खण्डीय आयु ६४–९६। ग्रहों की अतिविचित्र स्वराशि उच्च वर्गोत्तमादि और नीच शत्रु आदि (स्थितियों से समझ कर) आयु होनी ही चाहिए।

इसी प्रकार यदि उक्त तीनों विचार पद्धतियों से दीर्घायु = १, मध्यमायु = २ इस प्रकार के वैषम्य से मध्यम आयु खण्ड ३६ × २ = ७२ में मध्यमायु में १ खण्ड दीर्घायु की उपलब्धि से मध्यमायु में दीर्घायु ६४ या ७२ या ८० तक आयु की सत्ता समझी जा सकेगी।

यदि उक्त पद्धतियों में तीनों प्रकारों से अल्पायु की ही प्राप्ति है तो अल्पायु ४०, ३६ और ३२ में भी अल्पायु तो अनुपात से $\frac{४० \times १०८}{१२०}$ = ३६, तारतम्य से आयु मान समझा जा सकेगा। या $\frac{३६ \times ३२}{९६}$ = १८ वर्ष, $\frac{३२ \times ३२}{६४}$ में १६ वर्ष या अनेक प्रकार की ग्रहस्थितियों से इससे भी योग कम हो सकता है।

तीनों प्रकार से यदि जहाँ एकरूपता आती है उसी को आयु मान मानना चाहिए।

तथा तीनों प्रकार के वैषम्य होने से ग्रहस्थितियों के तारतम्य पर लग्न और होरा लग्न से जो आगत दीर्घ मध्याल्पायु हो उसी को ठीक समझना चाहिए।

और भी विचारान्तरों के अनुसार—

यदि जन्म लग्न विषम राशि हो तो द्वितीयाष्टमाधीश ग्रहों से तथा जन्म लग्न यदि सम है तो द्वादश षष्ठधीश ग्रहों में जो (द्वादशवर्गादि क्रम से) बली हो तथा उससे बुध ग्रह की केन्द्रस्थ स्थिति से दीर्घायु, पणफरस्थिति से मध्यमायु और आपोक्लिम स्थिति वश अल्पायु समझनी चाहिए।

इसी प्रकार "आत्माधिकः नभोगः सप्तानामष्टानामिति" सूत्र से प्राप्त आत्मकारक ग्रह की स्थिति से भी दीर्घमध्याल्पायु को समझ कर तथा लग्नाष्टमदशमभावाधीश ग्रहों की एकादश (लाभ), केन्द्र त्रिकोणादि स्थिति से दीघायु, द्वितीयाष्टमादि स्थिति से मध्यायु तृतीय षष्ठादि स्थिति वशेन अल्पायु समझकर बहुमत प्राप्त दीर्घ-मध्य और अल्पायु से आयु का इदमित्थं निर्णय करते हुये प्रसंगागत पाराशरी से मारक ग्रह की स्थिति का उक्त साधित दीर्घमध्याल्पायु के वर्षों में प्राप्त मारक ग्रह की दशा अन्तरदशा प्रत्यन्तर सूक्ष्म प्राणादि समय में जातक के निधन का विचार करना उचित होगा। तिस पर भी ग्रह योग के प्राबल्य के बावजूद अदृष्टशक्ति सर्वोपरि समझकर, शुभाशुभ आदेश किया जाना चाहिए। इदमित्थ यही ठीक है ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि फलित ज्योतिष के फलादेश के वैकल्पिक विचारों में मतैक्यता नहीं उपलब्ध हुई है।

इसीलिए, आचार्य श्रेष्ठ केशवाचार्य ने अपनी केशवी जातक में निसर्गायु, पिण्डायु गणितीय साध्य आयु विचारों से आयु वर्षों के आंकड़ों की स्पष्टता बताते हुए ग्रन्थ के उपसंहार के अवसर पर

"जीवेत्क्वापि विभंगरिष्टजशिशू रिष्टं विना मीयते,
अथाद्योऽब्दः शिशु सुदुस्तरोऽपि परो च कार्येषु नो पत्रिका।
कार्याप्रभूतनिमित्तपूर्वशकुनैः रक्षन्स्वमानं धिया,
होराज्ञेन सुबुद्धिना बहुधोदर्कश्च कालो बली।"

ग्रहस्थितिवश होने वाले शुभाशुभ फल संशय रहित नहीं है" इत्यादि तक कह दिया है।

"जीवन के प्रथम द्वितीय एवं तृतीय वर्ष तक की आयु सभी जातकों के लिए संशयात्मक कहते हुए इन तीन वर्षों के बीत जाने पर ही जातक की जन्मपत्रिका का निर्माण होना चाहिए" केशवाचार्य का स्पष्ट मत है॥ १॥

आयु समाप्ति का समय—

तद्दीशितुस्तत्रगताः पापिनस्तेन संयुताः ॥ २ ॥
तेषां दशाविपाकेषु संभवे निधनं नृणाम् ।
तेषांमसंभवे साक्षाद्व्ययाधीशदशास्वपि ॥ ३ ॥

मृत्यु कब होगी इस पर विचार किया जा रहा है—

विजया-व्याख्या—"मारकस्थान स्थित राशि के स्वामी ग्रह की दशा में जातक का मरण होता है" यह एक सामान्य अर्थ कहा जावेगा, क्योंकि पूर्व विवरणों से सर्वप्रथम जातक की आयु के प्रमाण वर्ष ज्ञात किये जाते हुए दीर्घ आयु की ग्रहस्थिति में भी मारक ग्रह की दशा का समय जातक के बाल्य अवस्था, यौवन अवस्था या किसी भी समय मारक ग्रह दशान्तरदशादि का भोग हो जाने से ही मृत्यु का निश्चय नहीं किया जाना चाहिए। अर्थात् अवस्था की पूर्ति के समीप में संभव है मारकेशदशा का समय नहीं हो तो मारक समय के निर्णय के लिए व्ययेशितुः=व्यय भावेश ग्रह की दशान्तर्दशादि में (भले ही व्ययभावेश या तत्सम्बन्धी शुभ ग्रह भी क्यों न हो गया हो) जातक का निधन (मरण) कहना चाहिए।

अथवा यदि मारकेश ग्रह के साथ स्थित पाप ग्रह जो त्रिषडायाधीश होता है उस ग्रह की दशान्तर्दशादि में शरीर का अन्त होता है तो उसी समय मृत्यु का आदेश करना चाहिए। अथ यदि उक्त समयों में भी आयु खण्डानुसार साधित आयु में व्यवहारतः आयु पूर्णता का ग्रहयोग समय नहीं हो तो व्ययभावेश की दशादि में मानव मरण का आदेश करना चाहिए ॥ १½–३ ॥

उक्त योग की अप्राप्ति पर—

अलाभे पुनरेतेषां सम्बन्धेन व्ययेशितुः ।
क्वचिच्छुभानां च दशास्वष्टमेश दशासु च ॥ ४ ॥

केवलानांच पापानां दशासु निधनं क्वचित् ।
कल्पनीयं बुधैर्नृणां मारकाणामदर्शने ॥ ५ ॥

मारक समय निर्णय—

विजया-व्याख्या—(१) मारकस्थानेश, (२) मारक स्थानस्थ, (३) मारकेश ग्रह का सहचारी, ये तीनों ग्रहों में मारक योग की प्राप्ति सभव होती है। इस प्रकार यदि उक्त स्थिति में आयु शेष के अवसर पर मारक ग्रह स्थितिवश उन-उन मारकेश ग्रहों का दशा भोग काल उपलब्ध न होने पर व्यय भावेश की दशादि समय पर निधन कहना चाहिए। कहीं-कहीं पर शुभ ग्रहों की भी दशादि समयों में, और कहीं पर

आयुस्थानव्ययभावेश की अप्राप्ति पर 'आयुस्थानाधीश अर्थात् अष्टमेश ग्रह की ही दशा में निधन होता है।

और यदि कदाचित् इस मारकेश, तत्सम्बन्धी आदि ग्रहों की दशादि में मरण योग की प्राप्ति न हो रही है तो केवल पाप ग्रहों त्रिषडायाधीश ग्रहों की दशादि में भी जातक के निधन का आदेश देना चाहिए ॥ ४ ॥

प्रबल मारक शनि ग्रह—

मारकैः सह सम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्येव न संशयः ॥ ६ ॥

इत्यायुर्दायाध्यायः

मारकेश ग्रहों के सम्बन्ध से या स्वातन्त्र्येण भी शनि ग्रह मारकेश होता है—

विजया-व्याख्या—प्रकृत्या पापफलकारक त्रिषडायाधीशत्वेन विशेष पापत्व सम्पन्न (विशेष अशुभ फलकर्त्ता) शनि ग्रह, उक्त कथित सभी मारक ग्रह स्थितियों को एक किनारे करते हुए स्वयं अपने मारक हो जाता है। इसलिए मारकेश ग्रह दशान्तर्दशादिकों की आयु पूर्णता पर मरण की अनुपलब्धि आदि देखकर व समझकर स्वाभाविक प्रबल पापग्रह शनि में त्रिषडायेशत्व धर्म सम्पन्नता होने पर प्रबल मारकेश धर्म आ जाने से साक्षात् मारकेश दशादिकों की अप्राप्ति या अलाभ पर स्वयं शनि ग्रह ही मारकेश हो जाता है ॥ ६ ॥

पर्वतीय केदारदत्त जोशीकृत लघुपाराशरी आयुर्दायाध्याय की

विजया व्याख्या सम्पन्न

अथ दशाफलाध्यायः

सम्बन्ध से ग्रहों की दशाओं का शुभाशुभ फल विचार—

न दिशेयुर्ग्रहाः सर्वे स्वदशासु स्वभुक्तिषु ।
शुभाशुभफलं नृणामात्मभावानुरूपतः ॥ १ ॥
आत्मसम्बन्धिनो ये च ये वा निजसधर्मिणः ।
तेषामन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम् ॥ २ ॥

ग्रहों का स्वभाव वर्णन—

विजया-व्याख्या—शुभ या पाप सभी ग्रह अपनी अपनी दशा और अपनी अन्तर्दशाओं में पूर्व विवेचित अपने आत्मभावानुसार या अपने स्वभावानुसार शुभ वा अशुभ फल नहीं देते हैं, इत्यादि कहते हुए अपनी-अपनी दशादि में अपने स्वभावानुकूल फल देते हैं" इत्यादि भी कहा जा रहा है, इस प्रकार उक्त कथन द्वय में परस्पर विरोध सा प्रतीत हो रहा है।

इस लिये "स्वदशासु" अपनी दशा और अपनी अन्तर्दशादि समयों में ही अपने स्वभावानुसार शुभाशुभ फल नहीं देते, अर्थात् पाप फलद ग्रह पाप एवं शुभफलद ग्रह शुभ फल नहीं देते। अथवा आत्मभावानुरूप जो भाव का तात्पर्य, ग्रह स्थित भवोत्पन्न फल नहीं देते हैं तो स्थान सम्बन्धादि सम्बन्ध विशेष ग्रह सम्बन्ध की दशा या अन्तर्दशा में शुभाशुभ फल देते हैं।

स्थानसम्बन्धी ग्रह विशेष के अभाव में, जो ग्रह अपना सधर्मी जो शुभाशुभ जैसा फल देता है तदनुसार ही वह ग्रह अपनी दशान्तर्दशादि में शुभाशुभ फल देता है।

जैसे—त्रिषडायेश ग्रहों को परस्पर सधर्मित्व कहा जावेगा तो त्रिकोणेश भी परस्पर सधर्मी होते हैं। तद्वत् द्वितीय द्वादशाधीश, लग्न सप्तमाधीश, द्वितीय द्वादशेश, तृतीय-लाभेश, चतुर्थदशमेश, पञ्चमनवमेश और षष्ठाष्टमेश ग्रहों में परस्पर का साधर्म्य होने से जो गह अपना सम्बन्धी हो और जो ग्रह अपना निज सधर्मी हो उन ग्रहों की अन्तर्दशा में अवश्य ही और अपनी निज की दशा में अपने स्वभावानुरूप फल देते हैं॥ १-२॥

शुभाशुभ फल मीमांसा—

इतरेषां दशानाथविरुद्धफलदायिनाम् ।
तत्तत्फलानुगुण्येन फलान्यूह्यानि सूरिभिः ॥ ३ ॥

सधर्मी ग्रह विचार किया जा रहा है—

विजया-व्याख्या—इतरेषां पद से आत्मसम्बन्ध से रहित ग्रह जो दशानाथ से विपरीत फल देने वाले ग्रहों की दशा में दशापति और अन्तर्दशापति ग्रहों के अनुसार

किसी भी ग्रह की दशा में जिस किसी भी ग्रह की अन्तर्दशा प्रचलित होती रही है। इस प्रकार दशाफल की कल्पना समझते हुए फलादेश करना चाहिये।

दशा और अन्तर्दशापति ग्रहों में ६ प्रकार के सम्बन्ध हो सकते हैं।

(१) सम्बन्धी ग्रह, (२) विरुद्धधर्मी ग्रह, (३) सम्बन्धी और अनुभयधर्मी (४) असम्बन्धी सधर्मी, (५) असम्बन्धी विरुद्धधर्मी और (६) असम्बन्धी अनुभयधर्मी।

सम्बन्धी और सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में सर्वोपरि फल, सम्बन्धी और अनुभय धर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में पूर्वापेक्षया कुछ कम, सम्बन्धी विरुद्धधर्मी ग्रह की अन्तर्दशामें कुछ कम इत्यादि इस प्रकार उत्तरोत्तर तारतम्य से फलादेश करना चाहिये ॥ ३ ॥

केन्द्रपति ग्रहदशा में विचार—

स्वदशायां त्रिकोणेश भुक्तौ केन्द्रपतिः स्वयम् ।
दिशेत्सोऽपि तथा नो चेदसम्बन्धेन पापकृत् ॥ ४ ॥

किस स्थिति में शुभ और अशुभ फलप्राप्तिकर ग्रहस्थितिसम्बन्ध—

विजया-व्याख्या—केन्द्रेश ग्रह की दशा और त्रिकोणेश ग्रह की अन्तर्दशा में जातक को शुभ फल की प्राप्ति होती है, तथा त्रिकोणेश की दशा और केन्द्रेश की अन्तर्दशा में दोनों के परस्पर के सम्बन्ध सम्पन्नता में शुभोदयकारक फलादेश ही होता है।

सम्बन्धरहित केन्द्र त्रिकोण ग्रहों की दशा या अन्तर्दशा में ऐच्छिक शुभफल की उपलब्धि नहीं होती अपि च अशुभ सम्बन्ध से अशुभफल होता है ॥ ४ ॥

राजयोगारम्भावसर पर मारकेश सम्बन्ध—

आरम्भो राजयोगस्य भवेन्मारकभुक्तिषु ।
प्रथयन्ति तमारम्य क्रमशः पाप भुक्तयः ॥ ५

पापग्रहान्तरदशा में राजयोगारम्भ का शुभाशुभ

विजया व्याख्या—योगकारक ग्रह की दशा में और मारक ग्रह की अन्तर्दशा में यदि राजयोग का आरम्भ होता है तो राजयोग की पूर्णता नहीं होती। दशा के आरम्भ और मारक दशा के अन्तर में शुभ फल का आभास सा होता है। दशारम्भ मे ही शुभफल देकर पश्चात् शुभफलाभास सा होता है। इसी प्रकार शुभफल ग्रह की अन्तर्दशा में यदि पाप फल की प्राप्ति देखी जाय तो आरम्भ में पापफलाधिक्य के साथ समाप्ति तक उस पाप ग्रह की अन्तर्दशा का नाममात्र के लिए अशुभ फल कहा जाना चाहिये।

यथा मेष लग्न की जातक की कुण्डली में चतुर्थेश चन्द्रमा, नवमेश बृहस्पति और द्वितीयेश तथा सप्तमेश शुक्र, (प्रबल मारक) के परस्पर की सम्बन्ध कारक ग्रह स्थितियों से चन्द्रमा और बृहस्पति के केन्द्रत्रिकोणेशत्व सम्बन्धों से प्रारम्भ में शुभ फल

प्राप्ति या भाग्ययोगवृद्धि होगी किन्तु शुक्र ग्रह की अन्तरदशा में शुभफल की विद्यमानता के बावजूद मारक फल प्राप्ति की भी संभावना कही जावेगी ।। ५ ।।

योग कारकदशानाथ सम्बन्ध रहित ग्रह दशा—

तत्सम्बन्धिशुभानां तु तथा पुनरसंयुजाम् ।
शुभानां तु समत्वेन संयोगो योगकारिणाम् ।। ६ ।।

अपूर्ण शुभफल या शुभफलाभास ग्रह स्थिति--

विजया-व्याख्या—भाग्ययोग पर राजयोग कारक दशानाथ ग्रह की दशा में, योग कारक दशानाथ ग्रह से सम्बन्धित योग कारी ग्रह की अन्तर्दशा में जिस प्रकार के फल की प्राप्ति होती है, तादृश शुभाशुभ फल की प्राप्ति भी, दशानाथ से सम्बन्ध रहित ग्रह की अन्तर्दशा में भी होता है ।

जैसे कुम्भ लग्न से दशमेश मंगल का नवमेश शुक्र से यदि सम्बन्ध होने से मंगल की दशा (केन्द्रेश) में शुक्र की अन्तर्दशा (नवमेश) में शुभ फल की प्राप्ति होगी । तथा सप्तमेश सूर्य की दशा में त्रिकोणेश शुक्र या बुध की अन्तरदशा की प्रवृत्ति समाप्ति पर शुभफलाभास कहा जावेगा विशेष शुभफल की उपलब्धि नहीं कही जा सकती ।।६।।

योगज शुभ फल प्राप्ति समय—

शुभस्यास्य प्रसक्तस्य दशायां योगकारकाः ।
स्वभुक्तिषु प्रयच्छन्ति कुत्रचिद्योगजं फलम् ।। ७ ।।

सम्बंधी ग्रह दशा में योगज फल—

विजया-व्याख्या - योग कारक ग्रह अपने सम्बन्धी ग्रह की दशा में तथा अपनी अन्तर्दशा में भी कहीं-कहीं योगज शुभफल देता है । यह स्थिति शुक्र और शनि में सविशेष हो सकती है ।। ७ ।।

अन्तर्दशाओं में राहु केतु —

तमो ग्रहौ शुभारूढावसम्बधेन केनचित् ।
अन्तर्दशानुसारेण भवेतां योग कारकौ ।। ८ ।।

इति दशाफलाध्याय

राहुग्रह राशीश शुभग्रह राशीश्वर होने से सम्बन्धरहित राहु केतु से शुभफल—

विजया व्याख्या—राहु और केतु शुभ स्थान स्थित अर्थात् केन्द्रत्रिकोणास्थित हों तो योग कारक ग्रह की दशा में उक्त राहु केतु की अन्तर्दशाओं में योगकारी ग्रह के साथ सम्बन्धाभाव की स्थिति में भी राहु और केतु भी योगज शुभफल देते हैं ।। ८ ।।

पर्वतीय केदारदत्तजोशी कृत लघुपाराशरी ग्रन्थ के दशाफलाध्याय की विजया व्याख्या सम्पन्न ।

अथ मिश्रकाध्यायः

अशुभ फल प्राप्ति की स्थिति

पापा यदि दशानाथाः शुभानां तदसंयुजाम् ।
भुक्तयः पापफलदास्तत्संयुक् शुभभुक्तयः ॥ १ ॥
भवन्ति मिश्रफलदा भुक्तयो योगकारिणाम् ।
अत्यन्तपापफलदा भवन्ति तदसंयुजाम् ॥ २ ॥

असम्बन्धित शुभग्रह दशा से भी पापग्रह दशा में अशुभ फल

विजया-व्याख्या—पाप ग्रह दशानाथ हो, अर्थात् पाप ग्रह की दशा के समय असम्बन्धित शुभ ग्रह की अन्तर्दशा समय में अशुभ फल की ही प्राप्ति होती है, क्योंकि इस स्थिति में शुभ ग्रह का पाप ग्रह से सम्बन्धाभाव होने से शुभ ग्रह की स्वतन्त्र सत्ता विचारणीय होती है अर्थात् पाप ग्रह दशानुरूप शुभ ग्रह की प्रगति होती है ।

तथा पापी ग्रह की दशा में यत्किञ्चित् सम्बन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में मिश्र फल की प्राप्ति कभी शुभ और कभी अशुभ फल की प्राप्ति कर (मिश्र फल) होती है ।

पापी ग्रह की दशा में असम्बन्धी योग कारक ग्रहों की अन्तर्दशा अत्यन्त अशुभ फल प्रदा होती है ॥ १–२ ॥

मृत्यु समय के लिए विचार विशेष

सत्यपि स्वेन सम्बन्धे न हन्ति शुभभुक्तिषु ।
हन्ति सत्यप्यपिसम्बन्धे मारकः पापभुक्तिषु ॥ ३ ॥

मारक ग्रह से सम्बन्धित शुभ ग्रह की अन्तर्दशादि में मारक विचार—

विजया-व्याख्या—मारकेश ग्रह की दशा में मृत्यु होना सम्भव होते हुए भी मारकेश ग्रह दशानाथ होने पर उसकी पूर्ण दशा में अन्य ग्रहों की अन्तर्दशाओं का भोग समय भी सुनिश्चित होने से मृत्यु समय के लिए कुछ आवश्यक विचार करना होगा ।

मारक ग्रह की दशा में, मारक ग्रह सम्बन्धित शुभग्रह की अन्तर्दशा में मारक फल (मृत्यु) नहीं होगी । किन्तु मारक ग्रह की दशा में मारक ग्रह से सम्बन्ध रहित पाप ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु होगी ही । अर्थात् मारक ग्रह दशा के साथ सम्बन्ध रहित शुभ ग्रह की अन्तर्दशा की अपेक्षा मारक ग्रह दशा में सम्बन्ध सम्पन्न पाप ग्रह की अन्तर्दशा में सुनिश्चित मृत्यु होती है ॥ ३ ॥

शनि शुक्र ग्रहों से विचार

परस्परदशायां स्वभुक्तौ सूर्यजभार्गवौ ।
व्यत्ययेन विशेषेण प्रदिशेतां शुभाशुभम् ॥ ४ ॥

शुक्र और शनि के दशाफलों का विशेष विचार किया जा रहा है—

विजया-व्याख्या—शुक्र और शनि की दशाओं में परस्पर के व्यत्यय से विशेष शुभाशुभ फल होता है। अर्थात् शुक्र की महादशा में शनि की अन्तर्दशा का शुभाशुभ फल शुक्र ग्रह की स्थिति से शुक्र स्वभावानुसार होगा तो शनि ग्रह की दशा में शुक्र ग्रह की अन्तर्दशा का फल शनि ग्रह की ही स्थिति के अनुसार शुभाशुभ फल होगा ॥ ४ ॥

केन्द्रत्रिकोणाधीशों से विख्यात राजयोग—

कर्मलग्नाधिनेतारावन्योऽन्याश्रयसंस्थितौ ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत् ॥ ५ ॥
धर्मलग्नाधिनेतारावन्योऽन्याश्रय संस्थितौ ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत् ॥ ६ ॥

इत्युडायप्रदीपः समाप्त

केन्द्र त्रिकोणाधीशो का परस्पर अन्योन्यराशिस्थ सम्बन्ध—

विजया-व्याख्या—'कर्म शब्द से दशम, लग्न से प्रथम, एवं धर्म पद से नवम और लग्न से प्रथम' मात्र ऐसा शब्दार्थ समझने से, पूर्व अध्याय में ("केन्द्रत्रिकोणेशों के सम्बन्धे" से) वर्णित भाग्य योग, जो केन्द्रत्रिकोणेशों के परस्पर के सम्बन्धों से कहे गये हैं, तदनुसार धर्म-कर्म का मात्र नवम दशम ऐसा अर्थ न समझकर कर्म शब्द से केन्द्र स्थान १।४।७।१० और लग्न शब्द से त्रिकोण स्थान ९।५ समझना ही युक्तियुक्त होगा जो आचार्यों की स्पष्टोक्ति पूर्व में भी बताई गई है। अतएव—

केन्द्रेश और त्रिकोणेश ग्रहों में केन्द्रेश ग्रह त्रिकोणस्थ राशि में, एवं त्रिकोणेश ग्रह केन्द्रस्थ राशि में हो, तो प्रबल राजयोग होता है ऐसा जातक देश-विदेशों में विख्यात एवं यत्र-तत्र सर्वत्र विजयी होता है। पूर्व में त्रिकोणेश ही केन्द्रेश होने से सर्वोत्कृष्ट राजयोग कहा गया है तो दशमेश नवमस्थ और नवमेश दशमस्थ या नवमेश-दशमेश दोनों नवम में या दशम में हों तो उत्कृष्ट राजयोग होता है।

धनु लग्न में नवमेश सूर्य, बृहस्पति की मीनराशि में, और कर्मेश तो नहीं किन्तु चतुर्थेश (द्वितीय केन्द्रेश) बृहस्पति, केन्द्रेश नवम में अर्थात् त्रिकोणस्थ सूर्य की राशि में है, राजयोग है ज्यौतिष प्रामाण्यम्। जातक का जीवन जन्म से आज तक का चिन्तनीय एवं विचारणीय रहा है। आगे शनि की अन्तर्दशा तक जीवन जावेगा या तत्पूर्व में ॥ ६ ॥

पर्वतीय केदारदत्त जोशी कृत लघुपाराशरी (उडुदाय प्रदीप)
ग्रन्थ मिश्रकाध्याय की विजया-व्याख्या सम्पन्न

॥ श्रीः ॥

अथ मध्यपाराशरी

प्रथमपरिच्छेदः

पराशरमुनिं नत्वा तस्य होरां निरीक्ष्य च ।
वक्ष्ये उडुदशामार्गं पूर्वशास्त्रानुसारतः ॥ १ ॥

पराशर मुनि को नमस्कार कर उनके होरा शास्त्र का निरीक्षण कर प्राचीन शास्त्रानुसार नक्षत्र दशा मार्ग कहता हूँ ॥ १ ॥

आदित्यप्रमुखाः खेटास्तथामेमिषादि राशयः ।
लोकस्यैवोपकारत्वं कर्तुमर्हन्ति सर्वदा ॥ २ ॥

सूर्यादिक ग्रहों एवं मेषादि द्वादश राशियों से लोकोपकार होता है ॥ २ ॥

प्रथमं नवमञ्चैव धनमित्युच्यते बुधैः ।
चतुर्थं दशमं प्रोक्तं सुखमेव मनीषिभिः ॥ ३ ॥

लग्नादि १२ भावों में, विद्वान् लोग १, और ९ स्थानों को धन और ४, १० स्थानों को सुख स्थान कहते हैं ॥ ३ ॥

अष्टमं ह्यायुषः स्थानमष्टमादष्टमञ्च यत् ।
तयोरपि व्यय स्थानं मारकस्थान मुच्यते ॥ ४ ॥

लघुपाराशरी आयुर्विचार श्लोक देखिए ॥ ४ ॥

चन्द्रभानू विना सर्वे मारका मारकाधिपाः ।
षष्ठाष्टमव्ययेशास्तु राहुकेतू तथैव च ॥ ५ ॥

सूर्य, चन्द्र को छोड़कर शेष ग्रह मारक स्थान (२।७) के स्वामी होने पर मारक होते हैं । षष्ठाष्टम व्यय भावों के स्वामी ग्रह और राहु केतु भी मारक होते है ॥ ५ ॥

आद्यन्तपौ च विज्ञेयौ चन्द्राक्रान्ताद्ग्रहौ नृणाम् ।
खरद्रेष्काणपश्चैव तथा वैनाशिकाधिपः ॥ ६ ॥

चन्द्राक्रान्त राशि से क्रमशः १ ओर १२ स्थानाधीश, खरद्रेष्काण एवं वैनाशिकाधिप होते हैं ॥ ६ ॥

चन्द्रराशीश्वर खरद्रेष्काण है और चन्द्र से १२ वाँ राशीश्वर ग्रह वैनाशिकाधिप है ॥ ६ ॥

विपत्ताराप्रत्यरीशौ वधमेशस्तथैव च।
मारकाः जातके प्रोक्ताः कालविद्भिर्मनीषिभिः ॥ ७ ॥

विपत् प्रत्यरि और वधताराधीश ग्रहों को भी मारक ग्रह समझना चाहिए ॥ ७ ॥

अथापरं प्रवक्ष्यामि राजयोगादि सम्भवम्।
ग्रहाणां स्थानभेदेन राशिदृष्टिवशात्फलम् ॥ ८ ॥

ग्रहों के स्थान, भेद, और दृष्टिसम्बन्ध से अन्य राजयोग बताए जा रहे हैं ॥ ८ ॥

जन्मकाले तु सम्प्राप्ते लग्नं निश्चित्य पण्डितैः।
तस्मिन्काले खेचराणां चारं निश्चित्य योजयेत् ॥ ९ ॥

सर्वप्रथम जन्मकालीन लग्न का निर्णय कर तत्कालीन ग्रहसञ्चार का गणित स्पष्ट आवश्यक होता है ॥ ९ ॥

पूर्वमायुः परीक्षेत् पश्चाल्लक्षणमेव च।
नोचेत्तु लक्षणज्ञाने ह्यायासो व्यर्थमाप्नुयात् ॥ १० ॥

जन्म कुण्डली देखकर सर्वप्रथम आयु का विचार करना चाहिए तदुपरि लक्षण विचारने चाहिये। आयु ही नहीं है तो लक्षणज्ञान का प्रयास व्यर्थ होगा। यदि आयु नहीं है जातक के राजयोगादि लक्षण व्याख्यानों से क्या लाभ होगा ? ॥ १० ॥

पुनस्तन्वादयोभावाः स्थाप्यास्तेषां शुभाशुभम्।
लाभं तृतीयं रन्ध्रञ्च शत्रुस्थानं व्ययन्तथा ॥ ११ ॥
एषां योगेन यो भावस्तन्नाशं प्राप्नुयाद् ध्रुवम् ॥ ११½ ॥

तदुपरि लग्नादि १२ भावों की स्थापना कर उन्हें शुभाशुभ संज्ञा से समझना चाहिये। ३, ६, ८, ११ और १२ भाव और इनसे सम्बन्धित भाव प्रायः विनाशकारक कहे गये हैं ॥ ११–११½ ॥

चत्वारो राशयो भद्राः केन्द्रकोणशुभावहाः ॥ १२ ॥
तेषां संयोग मात्रेण ह्यशुभोऽपि शुभो भवेत् ॥ १२½ ॥

केन्द्र = १।४।७।१०, कोण = ९।५ इस प्रकार ६ स्थानों में जो राशियां बैठी हैं। इनसे सम्बन्धित भावगत अशुभ राशियां भी शुभोदय कारक होती हैं।

केन्द्राश्चतस्रो व्याख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
तेषां मध्ये तु शुभदौ कर्मबन्धू विशेषतः ॥ १३½ ॥

तत्वदर्शी मुनियों के अनुभव से १।४।७।१० केन्द्रों में १० और ४ केन्द्रविशेष बली कहे गए हैं ॥ १३½ ॥

अथ योगविभागन्तु वच्मि पूर्वानुसारतः ॥ १४ ॥
पश्यन्ति सप्तमं सर्वे शनिजीवकुजापुनः।
विशेषतश्च त्रिदशत्रिकोणचतुरष्टमान् ॥ १४ ॥ १५ ॥

स्पष्टार्थ संज्ञाध्याय श्लोक ५ देखिए ।। १४ ।। १५ ।।

लक्ष्मीस्थानं त्रिकोणः स्याद्विष्णुस्थानं तु केन्द्रकम् ।
तेषां संयोगमात्रेण चक्रवर्ती नरो भवेत् ।। १६ ।।

९।५ स्थानों का नाम लक्ष्मी और १।४।७।१० स्थानों का नाम केन्द्र है, इन दोनों स्थानाधीश ग्रहों के परस्पर के सम्बन्धों से जातक चक्रवर्ती राजा होता है ।। १६ ।।

तपःस्थानधिपो मन्त्रे मन्त्रनाथेऽथवा गुरौ ।
उभावन्योऽन्यसन्दृष्टौ जातश्चेद्बहुराज्यभाक् ।। १७ ।।

नवमेश पञ्चम में, अथवा नवमेश बृहस्पति हो, अथवा नवमेश और गुरु का परस्पर सम्बन्ध हो तो जातक अनेक राज्यों का राजभोग करता है ।। १७ ।।

यत्र कुत्रापि संयुक्तौ तौ चापि समसप्तमौ ।
राजवंशोद्भवो बालो राजाभवति निश्चितम् ।। १८ ।।

किसी भी जातक कुण्डली में पञ्चमेश और बृहस्पति एकत्र हों या परस्पर समसप्तम हों तो राजवंशोत्पन्न बालक ही राजा होता है ।। १८ ।।

बाहनेशे तथा माने मानेशे वाहने गते ।
बुद्धिधर्माधिपाभ्यान्तु दृष्टौ चेद्बहुराज्यभाक् ।। १९ ।।

चतुर्थेश दशम में एवं दशमेश चतुर्थ में स्थित हों और पञ्चम नवम से दृष्ट हों तो जातक बहुराजराज्यभोगी होता है ।। १९ ।।

मन्त्रेशकर्मेशसुखेशलग्ननाथास्तथा धर्मपसंयुताश्चेत् ।
नृपोद्भवश्चेद्बहुवारणाश्वैः स्वतेजसा व्याप्तदिगन्तरालम् ।। २० ।।

लग्न पञ्चम नवम और दशमाधीश ग्रहों में कोई भी यदि नवमेश से युक्त हों तो राजकुलोत्पन्न बालक हाथी घोड़े से युक्त होकर अपने प्रताप से देश विदेश में ख्यात होता है ।। २० ।।

सुखकर्माधिपौ चैव मन्त्रनाथेन संयुतौ ।
धर्मनाथेन सन्दृष्टौ जातश्चेद्बहु राज्यभाक् ।। २१ ।।

सुखेश और दशमेश पञ्चमेश से युक्त होकर नवमेश से दृष्ट हो तो बालक बहुराज्य सुखभाग् होता है ।। २१ ।।

सुतेश्वरो धर्मपसंयुतश्चेत् लग्नेश्वरेणाऽपि युतो विलग्ने ।
सुखेऽथवा मानगृहेऽथवा स्याद्राज्याभिषिक्तो यदि राजवंश्यः ।। २२ ।।

धर्मेश और लग्नेश से युक्त पञ्चमेश, यदि लग्न चतुर्थ या दशम में हों तो राजवंशोद्भव जातक ही राजगद्दी का उत्तराधिकारी होता है ।। २२ ।।

इति प्रथमपरिच्छेदः

अथ द्वितीयपरिच्छेदः

अथापरं प्रवक्ष्यामि धनयोगं विशेषतः ।
ग्रहाणां स्थानभेदेन राशिदृष्टिवशात्तथा ।। १ ।।

पराशर कह रहे हैं कि—ग्रहों के स्थान और दृष्टि सम्बन्ध से धन योग बता रहा हूँ ।। १ ।।

ये ये ग्रहा धर्मपबुद्धिपाभ्यां युक्ताश्च दृष्टाश्च सुखप्रदास्ते ।
रन्ध्रेश्वरारिव्ययपैर्युताः स्यु शोकप्रदा मारकनायकैश्च ।। २ ।।

नवमेश और पञ्चमेश से युत या दृष्ट कोई भी ग्रह शुभ फल्या होता है । षष्ठाष्टम-व्ययाधीश और मारकेश से युक्त या दृष्ट ग्रह से शुभफल की आशा नहीं करनी चाहिए ।। २ ।।

क्रूरसौम्यविभागेन स्वस्थानादिवशात्तथा ।
साहचर्याच्च योगानां धनयोगान्प्रकल्पयेत् ।। ३ ।।

अपने स्थान वश के योगों तथा पाप-शुभ ग्रहों की स्थान स्थिति वश उनके परस्पर के सम्बन्धों से धनप्राप्तिकारक योग विचारने चाहिए ।। ३ ।।

धर्मस्थाने गुरुक्षेत्रे गुरुशुक्रयुते तथा ।
पञ्चमाधिपयुक्ते वा बहुद्रव्यस्य नायकः ।। ४ ।।

लग्न से नवमस्थान में धनु या मीन राशि हो, तो गुरु शुक्र से अथवा पञ्चमेश से यदि युक्त हो तो जातक बहुत धनी होता है ।। ४ ।।

पञ्चमे सोमजक्षेत्रे तस्मिन्सौम्ययुते यदि ।
लाभे सचन्द्रो भौमस्तु बहुद्रव्यस्य नायकः ।। ५ ।।

मिथुन कन्या राशियाँ पञ्चम स्थान में होकर बुध से युक्त होती हैं, और एकादश में यदि चन्द्र मंगल बैठे हों तो जातक विशेष धनी होता है ।। ५ ।।

पञ्चमे तु भृगुक्षेत्रे तस्मिञ्छुक्रे समोमजे ।
लाभे शनैश्चरयुते बहुद्रव्यस्य नायकः ।। ६ ।।

पञ्चमभाव में वृष या तुला राशि में बुध सहित शुक्र हो, तथा एकादश में यदि शनिग्रह हो तो विशेष धनी होता है ।। ६ ।।

पञ्चमे तु रविक्षेत्रे तस्मिन् रवियुते यदि ।
लाभे देवेन्द्रपूज्येतु बहुद्रव्यस्य नायकः ।। ७ ।।

मेष लग्न से पञ्चम सिंह राशिगत सूर्य, और बृहस्पति ११वें हो तो जातक बहुत धनी होता है ।। ७ ।।

पञ्चमे तु शनिक्षेत्रे तस्मिन्सूर्यजसंयुते ।
लाभेशात्मजयुते बहुद्रव्यस्य नायकः ।। ८ ।।

लाभेश से युत पञ्चम में स्वगृही शनि होने से जातक विशेष धन सम्पन्न होता है ।।८।।

पञ्चमे तु गुरुक्षेत्रे तस्मिन् गुरु युते यदि।
लाभे सचन्द्रसौम्ये तु बहुद्रव्यस्य नायकः॥ ९॥

स्वगृही गुरु पञ्चम में, और लाभ भाव चन्द्र बुध युक्त हो तो जातक बहुत धनी होता है॥ ९॥

पञ्चमे तु शशि क्षेत्रे तस्मिन् शशियुते यदि।
लाभे भौमेन संयुक्ते बहुद्रव्यस्य नायकः॥ १०॥

स्वराशिगत चन्द्रमा पञ्चम में, और लाभ भावगत मंगल से जातक सुन्दर धनी होता है॥ १०॥

भानुक्षेत्रे गते लग्ने तस्मिन् भानौ युते यदि।
यदि भौमेन गुरुणा दृष्टे स्यादयुतैर्धनैः॥ ११॥

स्वराशिगत लग्नस्थ सूर्य पर यदि मंगल बृहस्पति की दृष्टि हो तो कोटि का अधीश होता है॥ ११॥

चन्द्रक्षेत्रेगते लग्ने तस्मिञ्चन्द्रगते यदि।
जीवभौमयुते दृष्टे जातो धनयशोर्चितः॥ १२॥

कर्क राशिगत चन्द्रमा लग्नस्थ हो और गुरु मंगल से युत या दृष्ट हो तो कोट्यधीश होता है॥ १२॥

भौमक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन्भौमेन संयुते।
गुरु चन्द्रयुते दृष्टे जाता धन यशोर्चितः॥ १३॥

स्वराशिगत लग्नस्थ मंगल, चन्द्र गुरु से युत अथवा दृष्ट हो तो बहुत धनी होता है॥ १३॥

बुधक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन्सौम्ययुते यदि।
गुरुचन्द्रयुते दृष्टे जातो धनयशोर्चितः॥ १४॥

मिथुन या कन्या राशिस्थ लग्नगत बुध, यदि गुरु चन्द्र से दृष्ट या युत हो तो भी विशेष धनी होता है॥ १४॥

शुक्रक्षेत्रगते लग्ने तस्मिञ्छुक्रेण संयुते।
शनिसौम्ययुते दृष्टे जातो धनयशोन्वितः॥ १५॥

तुला या वृष राशिगत शुक्र पर शनि बुध का योग या दृष्टि हो तो भी विशेष धनी होता है॥ १५॥

शनिक्षेत्रगते लग्ने तस्मिञ्चञ्छनियुते यदि।
बुधशुक्रयुते दृष्टे जातो धनयशोन्वितः॥ १६॥

मकर या कुम्भ राशिस्थ लग्नगत शनि बुध शुक्र से युत या दृष्ट हो तो जातक बड़ा धनी होता है॥ १६॥

इति द्वितीयपरिच्छेदः

अथ तृतीयपरिच्छेदः

अथापरं प्रवक्ष्यामि दारिद्र्यं दुःखकारणम् ।
क्रूररवेटादियोगैश्च दारिद्र्यं सम्भवेन्नृणाम् ॥ १ ॥

दुःख के कारण दरिद्र योग कहे जा रहे हैं जो पाप ग्रहों के सम्बन्ध से होते हैं ॥१॥

ये ये ग्रहाः धर्मपबुद्धिपाभ्यां युक्ता न दृष्टा बहुदुखदास्ते ।
रन्ध्रेश्वरारिर्व्ययपैर्युता ये व्ययप्रदा मारक नाथकेन ॥ २ ॥

पञ्चमनवमाधीशों से युक्त और दृष्ट सम्बन्ध से रहित कोई भी ग्रह बहुत दुखद होता हैं । षष्ठाष्टमद्वादश भावेशों से युक्त वा दृष्ट अथवा मारकेश ग्रह से युत दृष्ट ग्रह से मृत्यु या मृत्यु तुल्य दुख होता है ॥ २ ॥

लग्नाधिपे रिष्फगते रिष्फेशे लग्नमागते ।
मारकेशयुते दृष्टे जातस्य निधनं वदेत् ॥ ३ ॥

लग्नेश १२वें और द्वादशेष लग्नगत हो, मारकेश से युत दृष्ट हो तो मृत्यु योग होता है ॥ ३ ॥

लग्नाधिपे शत्रुगृहेगते वा षष्ठेश्वरे लग्नगतेऽथवाऽस्ते ।
विलग्नपे मारकनाथदृष्टे जातो भवेन्निर्धनको मनुष्यः ॥ ४ ॥

मारकेश से दृष्ट लग्नेश शत्रु घर में हो अथवा अस्तंगत षष्ठेश लग्नस्थ हो तो मनुष्य निर्धन होता है ॥ ४ ॥

लग्नेन्दौ केतुसंयुक्ते लग्नेशे निधनंगते ।
मारकेशयुते दृष्टे जातः स्यान्निर्धनो नरः ॥ ५ ॥

केतु से युक्त लग्नगत चन्द्र हो, अष्टनस्थ लग्नेश को मारकेश देखता हो तो जातक तिर्धन होता है ॥ ५ ॥

षष्ठाष्टमव्ययगते लग्नेशे पापसंयुते ।
मारकेशयुतदृष्टे राजवंशेऽपि निर्धनः ॥ ६ ॥

पापयुक्त षष्ठाष्टमगल लग्नेश पर मारकेश की दृष्टि और योग से राजवंशोत्पन्न जातक भी निधन होता है ॥ ६ ॥

विलग्ननाथे रविणा सरिष्फनाथेन युक्ते यदि पापदृष्टे ।
मित्रात्मजनाथयुतेऽथदृष्टे शुभैर्नदृष्टः स भवेद्दरिद्रः ॥ ७ ॥

सूर्य और व्ययेश से युत दृष्ट लग्नेश पर पाप दृष्टि हो, लग्नेश शनि युत हो, शुभ ग्रहों से युत दृष्ट न हो तो ऐसा योग, परिपूर्ण दरिद्रता का सूचक होता है ॥ ७ ॥

मन्त्रेशो धर्मनाथश्च षष्ठे वा खेस्थितौ क्रमात् ।
दृष्टौ चेन्मारकेशेन जातस्यान्निर्धनो नरः ॥ ८ ॥

पञ्चमेश और नवमेश छठे या दशम में हों मारकेश से दृष्ट हों तो जातक निर्धन होता है ॥ ८ ॥

यद्भावेशे रन्ध्ररिष्फारिसंस्थे यद्भावस्था रन्ध्ररिष्फारिनाथाः ।
पापैर्युक्तादृष्टायुतास्तस्य नाशं दुखाक्रान्तेनिर्धनश्चञ्चलः स्यात् ॥ ९ ॥

जिस भाव का स्वामी ६,८,१२ में हो और ६,८,१२ के स्वामी जिस भाव में पाप ग्रह युत दृष्ट हों, उस भाव के नाश के साथ जातक चञ्चल और दुखी होता है ॥ ९ ॥

चन्द्रक्रान्तनवांशेशो मारकेशयुतो यदि ।
मारकस्थानगो वापि जातस्यान्निर्धनो नरः ॥ १० ॥

जन्मकालीन लग्न नवांशेश यदि मारकेश युक्त हो, या मारक स्थानगत हो तो जातक निर्धन होता है ॥ १० ॥

पापग्रहे लग्नगते भाग्यकर्माधिपौ विना ।
मारकेशयुते दृष्टे जातः स्यान्निर्धनो नरः ॥ ११ ॥

नवमेशव दशमेश न होकर, मारकेश से युत वा दृष्ट पाप ग्रह से, दरिद्र योग ही होता है'॥ ११ ॥

विलग्नेशनवांशेशो रिष्फषष्टागो यदि ।
मारकेशयुतो दृष्टो जातस्स्यान्निर्धनो नरः ॥ १२ ॥

यदि लग्नेश और नवांशेश षष्ठाष्टमद्वादश भावगत हों मारकेश से युत दृष्ट हों तो जातक निर्धन होता है ॥ १२ ॥

धन संस्थौ च भौमेन्दू कथितौ धननाशकौ ।
बुधेक्षितौ महावित्तं कुरुतस्तद्गतः शनिः ॥ १३ ॥

धनभावस्थ चन्द्र और मंगल धननाश कारक होते है । यदि धनभावगत चन्द्र मंगल पर बुध की दृष्टि हो तो जातक बहुत धनी होता है ॥ १३ ॥

निःस्वतां कुरुते तत्र रविर्नित्यं यमेक्षितः ।
महाधनमुतं ख्यातं शन्यदृष्टः करोत्यसौ ॥ १४ ॥

धनभावगत रवि पर भी शनि की दृष्टि से धन नाश होता है । यदि धन भावगत सूर्य पर शनि की दृष्टि नहीं है तो जातक धनी होता है ॥ १४ ॥

धनभावगताः सौम्याः कुर्वन्त्येव धनं बहु ।
बुधदृष्टो गुरुस्तत्र निर्धनं कुरुते नरम् ॥ १५ ॥

धनभावगत सभी शुभ ग्रहों से जातक धनी होता है, तथा धन भावगत गुरु पर यदि बुध की दृष्टि हो तो जातक निर्धन ही होता है ॥ १५ ॥

बुधचन्द्रेक्षितस्तत्र सर्वस्वं हन्ति निश्चितम् ।
एतद्धि विबुधैश्चिन्त्यं बलाबलविचारतः ॥ १६ ॥

धनभावगत बुध पर चन्द्र दृष्टि से सर्व धन का नाश हो जाता है । ग्रहों के बलाबल के विचार के आधार से उक्त धनी या निर्धनी जातक योगों का फलादेश करना चाहिए ॥ १६ ॥

इति तृतीयपरिच्छेदः

अथ चतुर्थः परिच्छेदः

वक्ष्येऽहं स्रग्मुद्धृत्य ज्योतिश्शास्त्राम्बुधेतस्ततः ।
दशा सौख्यप्रदा नृणां ग्रहाणां दृष्टियोगतः ॥ १ ॥

ज्योतिषशास्त्र महासागर का सार भूत, जो तत्त्व जातक की सुखप्रद दशा है, उसका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

तनुनित्यसनादेयास्तथा धान्यासटासना ।
नरेतिसंख्या विज्ञेया: क्रमात्सूर्यादि वत्सराः ॥ २ ॥

जैमिनि ऋषि प्रणीत जैमिनि सूत्र में अकारादि हकार वर्णों से अंक संख्या का जैसा मापदण्ड माना गया है, उसी प्रकार इस मध्यपाराशरी रचयिता विद्वान् ज्योतिषी ने भी यहाँ पर अक्षरों से अंको के बोधक वर्णों का प्रयोग किया हैं (जैमिनि ज्योतिष फलित में एक सूत्र ग्रन्थ है जो इससे प्राचीन होना चाहिए)

जैमिनि सूत्र की टीका में बृद्ध कारिका निम्न है—

कटपयवर्गभवैरिह पिण्डान्त्यैरक्षरैरङ्काः ।
नञे च शून्ये ज्ञेये तथा स्वरे केवले कथितम् ॥

क्रम इस प्रकार है ।

क से झ तक संख्या = ९, अर्थात् क = १, ख = २, ग = ३, घ = ४, ङ = ५, च = ६, छ = ७, ज = ८, झ = ९ तथा ट १, ठ = २, ड = ३, ढ = ४, ण = ५, त = ६, थ = ७, द = ८, ध = ९, न = ०, तथा प = १, फ = २, ब = ३, भ = ४, म = ५, तथा य = १, र = २, ल = ३, व = ४, श = ५, ष = ६, स = ७, ह = ८, अ-आ-इ सभी० एवं न ञ = ० इस प्रकार की कल्पना ध्यान में रखते हुए इस श्लोक में हलन्त व्यञ्जन और स्वर को शून्य समझते हुए—

तनु = ६ वर्ष = सू० । नित्य = १० चं०, न = ०, त = १ "वामगतिकाः अङ्काः" सना = ७ = मं, दे या = १८ रा० तया = १६ = बृ०, धान्या = १९ = शनि, सटा = १७ = बुध, सना = ७ केतु न० = र २ नर = २० = शुक्र इस प्रकार उक्त क्रम से सूर्यादिक ग्रहों की दशा के वर्षमान बताये गये हैं । सू० चं० मं० बु० बृ० शु० श० रा० के इस क्रम में सू०, चं०, मं० रा० बृ० श०, बु०, के० और शुक्र यह क्रम कैसे माना गया होगा ?

स्वदशा रामगुणिता तद्दशा गुणिता पुनः ।
खरामभागतो लब्धं फलं मासादिकं भवेत् ॥ ३ ॥

अपनी दशा के वर्ष मान को ३ से गुणाकर उस दशा में जिस ग्रह की अन्तरदशा जाननी है उसकी अन्तर्दशा से गुणा कर गुणन फल में ३० का भाग देने मासादिक लब्धि

उस ग्रह की अन्तर्दशा होती हैं। जैसे सूर्य में सूर्यान्तर समय ज्ञात करना है, अतः सूर्य वर्ष १=६×३=१८, १८×६=१०८=दिन अर्थात् ० वर्ष ३ मास, और १८ दिन सूर्य में सूर्य की अन्तर्दशा का मान होता है। एवं चन्द्र में यदि शुक्र का अन्तर ज्ञात करना है तो १०×३=३०, ३०×१०=३०० दिन=१० मास=० वर्ष १० महीना और ० शून्य दिन इसी प्रकार सर्वत्र समझिए ॥ ३ ॥

अन्तर्दशां विनिष्कृष्य स्वदशासंगुण्ययत्नतः।
युगेन विभजेल्लब्धं दिनं तद्दशाफलम् ॥ ४ ॥
स्वगुणेन हृताल्लब्धमन्तर्दशा भवेत्।
एवं सूक्ष्मदशां ज्ञात्वा तथा प्राणदशामपि ॥ ५ ॥

पूर्व नियम से दिनात्मक अन्तर्दशा समय निकाल कर पुनः इसे अपेक्षित ग्रह की महादशा वर्ष संख्या से गुणितकर गुणन फल में ४ का भाग देने से लब्धि में पुनः ३० का भाग देसे से दिनादिक अन्तर में अन्तर्दशा मान होता है।

यथा सूर्य में सूर्यान्तर दशा=१०८ दिन×६÷१२०=० वर्ष ० मास ५ दिन २४ घटी इसी प्रकार यह सूर्य दशा में सूर्यान्तर में सूर्य का ही प्रत्यन्तर होगा।

१०८×१०÷१२०=०।०।९।० एवं सर्वत्र समझिए ॥ ४ ॥ ५ ॥

आहुः शुभाशुभफलं नृणां कालविदो जनाः।
एतत्कृते निर्णयिते ह्यायुषो निश्चयो भवेत् ॥ ६ ॥

इस आधार से ज्योतिर्विद समाज से जातकों के शुभाशुभ फल विचार परम्परया आयु का भी निर्णय किया गया है ॥ ६ ॥

पञ्चमेशदशायां तु धर्मपस्य दशा तु या।
अतीवशुभदा प्रोक्ता कालविद्भिर्मुनीश्वरैः ॥ ७ ॥

दैवज्ञवर्यों ने पञ्चमेश की दशा में नवमेश ग्रह की अन्तर्दशा का समय सर्वोत्तम कहा हैं ॥ ७ ॥

समन्त्रनाथस्य तपोधिपस्य दशा शुभा राज्यसुतप्रदा स्यात्।
सकीर्तिनाथस्य सुखेश्वरस्य दशा तथा प्राहुरुदारचित्ताः ॥ ८ ॥

उदार विचार धारा के दैवज्ञों ने, पञ्चमेश युक्त नवमेश की दशा, तथा पञ्चमेश ग्रह से युक्त चतुर्थेश ग्रह की दशादि समयों में मानव की भाग्यवृद्धि कही हैं ॥ ८ ॥

पञ्चमेशेन युक्तस्य ग्रहस्य शुभदा दशा।
तथा धर्मपयुक्तस्य दशा परमशोभना ॥ ९ ॥

पञ्चमेश से युत तथा नवमेश युक्त ग्रह दशा उत्तम फलद होती है ॥ ९ ॥

पापदृष्टस्य खेटस्य दशा हानिकरा मता।
शुभयुक्तस्य खेटस्य दशा द्रव्यप्रदा भवेत् ॥ १० ॥

पापग्रह से दृष्ट ग्रह की दशा हानिप्रद तथा शुभ ग्रह युक्त दशा लाभाय होती है ॥ १० ॥

सपञ्चमेशलग्नेशदशा राज्यप्रदायिनी ।
तथा धर्मपयुक्तस्य लग्नपस्य दशा मता ॥ ११ ॥

पञ्चमेश युक्त लग्नेश दशा जैसे राज्यप्रदा होती है, इसी प्रकार धर्मेश युक्त लग्नेश की दशा में राज्यादि सुखोदय होता है ॥ ११ ॥

सपञ्चमेशस्य तपाधिपस्य दशा भवेद्राज्यसुखार्थलाभदा ।
तथैव मानाधिपसंयुतस्य सुतेश्वरस्यापि दशा शुभा स्यात् ॥ १२ ॥

पञ्चमेश युक्त नवमेश की दशा, में अर्थलाभ के साथ जैसे राज्य सुख प्राप्ति होती है, तथैव नवमेश युक्त पञ्चमेश दशा का भी फल होता है ॥ १२ ॥

पञ्चमेशेन युक्तस्य मानेशस्य दशा शुभा ।
सुखेशसहितस्यापि धर्मेशस्य दशा शुभा ॥ १३ ॥

पञ्चमेश युक्त दशमेश की दशा की तरह चतुर्थेश युक्त नवमेश दशा भी शुभाय होती है ॥ १३ ॥

तथा शुभस्थानगमानपस्य तथैव मानार्थ सुखप्रदा स्यात् ।
दशा नृणां सौख्यकरी भवेद्धि सुखेशयुक्तस्य च मानपस्य ॥ १४ ॥

शुभस्थानगत नवमेश दशा में मानार्थ सुख लाभ जैसे होता है, उसी प्रकार चतुर्थेश युक्त नवमेश दशा में भी शुभोदय होता है ॥ १४ ॥

षष्ठस्य सप्तमस्यैको नायको मानराशिगः ।
दशा तस्य शुभा ज्ञेया तथा तेन युतस्य च ॥ १५ ॥

षष्ठ या सप्तम भावों में किसी एक का स्वामी यदि नवमस्थ हो तो ऐसे नवमस्थ ग्रह की भी दशा शुभोदय कारक होती है, तथा षष्ठसप्तमाधीश दोनों में एक से युत नवमेश दशा शुभाय होती है ॥ १५ ॥

एको द्विसप्तमस्थाननायको यदि सौख्यगः ।
तेनयुक्तदशाज्ञेया शुभदाऽऽहुर्मनीषिणः ॥ १६ ॥

द्वितीय चतुर्थ भावाधीशों में यदि एक भी ग्रह चतुर्थग होता है तो इससे युक्त किसी ग्रह की दशा में शुभफल प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥

षष्ठाष्टमव्ययाधीशाः पञ्चमाधिपसंयुताः ।
तेषां दशा च शुभदा प्रोच्यते कालवित्तमैः ॥ १७ ॥

कालशास्त्रज्ञों ने पञ्चमेश से युत षष्ठ सप्तम व्ययाधीशों की दशा शुभ फलदा कहा है ॥ १७ ॥

सुखेशो मानभावस्थो मानेशः सुखराशिगः ।
तयोर्दशां शुभामाहुर्ज्योतिश्शास्त्रविदो जनाः ॥ १८ ॥

जिस जातक का चतुर्थेश दशम में, दशमेश चतुर्थ में हो तो उन उन दशाओं में दैवज्ञ समूह से शुभफल की प्राप्ति कही गई है ॥ १८ ॥

सुखेशमानेशसुतेशधर्मपा एकत्रयुक्ता यदि यत्र कुत्र ।
तेषां दशा राज्यफलप्रदास्तैर्युक्तग्रहाणामपि दृग्युतेर्वा ॥ १९ ॥

जिस जातक की जन्मपत्री में चतुर्थ-पञ्चम-नवम-दशमाधीश ग्रह एक साथ होते हैं तो उनमें किसी एक की दशा शुभाय होती है, तथा उक्त ग्रहों के साथ और जो ग्रह हों या उक्त ग्रहों पर जिसकी दृष्टि होती है, उस उस ग्रह की दशा भी शुभोदयकारक होती है ॥ १९ ॥

वाहनस्थानसंयुक्तमन्त्रनाथदशा शुभा ।
सुखराशिस्थकर्मेशदशा राज्यप्रदायिनी ॥ २० ॥

चतुर्थ भावस्थ पञ्चमेश ग्रह एवं सुखराशिगत दशमेश की दशा शुभप्रदा होती है ॥२०॥

ताभ्यां यक्तस्य खेटस्य दृष्टियुक्तस्य चैतयोः ।
राज्यप्रदां दशामाहु विद्वांसो दैवचिन्तकाः ॥ २१ ॥

कर्मेश और पञ्चमेश इन दोनों से युत और दृष्ट जो ग्रह हो, उसकी दशा एवं अन्तरों में दैवज्ञों के मत से राज्यलाभ योग होता है ॥ २१ ॥

कर्मस्थानस्थ बुद्धीशदशा सम्पत्करी भवेत् ।
मानस्थिततपोऽधीशदशा राज्यप्रदायिनी ॥ २२ ॥

दशायस्थ पञ्चमेश और नवमेश दशा में राज्य प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥

इति चतुर्थपरिच्छेदः ॥

अथ पञ्चमपरिच्छेदः

अथ वक्ष्ये खगेन्द्राणां भुक्ति पञ्चविधामहम् ।
दशाचान्तर्दशा चैवं ततोऽपि विदशा तथा ॥ १ ॥

दशान्तर्दशा के साथ पाँच प्रकार की भुक्ति (अन्तर-प्रत्यन्तरादि) कही जा रही है ॥ १ ॥

सूक्ष्मभुक्तिः प्राणदशा एवं पञ्चदशा स्मृताः ।
लग्नेशे स्वनवांशस्थे तस्य भुक्तिः शुभावहा ॥ २ ॥
स्वद्वादशांशके लग्ननाथे वा स्वदृक्काणगे ।
तस्य भुक्तिः शुभामाहुः यवनाः कालवित्तमाः ॥ ३ ॥

अपने द्रेक्काण, अपने नवांश एव अपने द्वादशंगत लग्नेश की अन्तरदशा शुभाय होती है, यह फलित ज्योतिष के मर्मज्ञ यवनाचार्यों का मत है ॥ २–३ ॥

स्वत्रिंशांशे तथा मित्रत्रिंशांशेऽत्रस्थितो यदि ।
तस्यभुक्तिः शुभाप्रोक्ता कालविद्भिर्मुनीश्वरैः ॥ ४ ॥

मित्रक्षेत्रनवांशस्थे मित्रस्य द्विरसांशके ।
तस्य भुक्तिः शुभाप्रोक्ता कालविद्भिर्मुनीश्वरैः ॥ ५ ॥

मित्रग्रह स्वक्षेत्रांश तथा मित्र त्रिंशांश स्थित तथा अपने त्रिंशांशस्थ तथा मित्रराशि नवांश द्वादशांस्थ ग्रह की अन्तर्दशा भी शुभ फलदा होती है ॥ ४–५ ॥

वृद्धिक्षेत्रनवांशस्थे पुत्रस्य द्विरसांशके ।
मित्रद्रेक्काणगे वाऽपि तस्य भुक्तिः शुभावहा ॥ ६ ॥

पञ्चम या पञ्चमभाव के नवांश में और पञ्चमभाव के द्वादशांश या मित्रद्रेक्काणगत ग्रह की भुक्तियों अर्थात् अन्तर्दशा प्रत्यन्तर सूक्ष्म और प्राणदशा समयों में शुभ फल होता है ॥ ६ ॥

तपोराशिनवांशस्थे धर्मस्य द्विरसांशके ।
गुरुद्रेष्काणगे वापि तस्य भुक्तिः शुभावहा ॥ ७ ॥

नवमभावस्थ राशि उसके नवांश या उसके द्वादशांश या गुरु के द्रेष्काणगत ग्रह की अन्तरादि भुक्तियों में शुभ फलोदय होता है ॥ ७ ॥

सुखराशिनवांशस्थे वाहनद्विरसांशके ।
सुखद्रेष्काणगे वाऽपि तस्य भुक्तिः शुभावहा ॥ ८ ॥

चतुर्थ राशि नवांश द्वादशांशगत या चतुर्थ राशि द्रेष्काणगत ग्रहों की भुक्तियों में शुभफलावाप्ति होती है ॥ ८ ॥

विलग्ननाथस्थितभांशनाथे मित्रांशके मित्रग्रहेण दृष्टे ;
सुहृद्दृक्काणस्य नवांशके वा तदास्य भुक्तिः शुभदां वदन्ति ॥ ९ ॥

लग्नेश की राशि स्थित नवांश नाथ ग्रह, मित्र राशिगत हो या मित्र ग्रह से दृष्ट हो अथवा लग्नेश राशि स्थित ग्रह मित्र द्रेकाण में हो तो उसकी भुक्ति में शुभ फल होता है ॥ ९ ॥

अथ वक्ष्ये विशेषेण दशा कष्टप्रदा नृणाम् ।
षष्ठाष्टमव्ययेशानां दशा कष्टप्रदायिनी ॥ १० ॥

षष्ठाष्टमद्वादशाधीश ग्रहों की दशा सदा दुःखदा होती है ॥ १० ॥

मारकेशेन षष्ठेशे युक्ते लग्नाधिपे जनाः ।
तस्य भुक्तौ ज्वरप्राप्तिः प्राहुः कालविदो जनाः ॥ ११ ॥

मारकेश युक्त षष्ठेश यदि कन्याधिप हो तो ऐसे अन्तरादि में ज्वर रोग होता है ॥ ११ ॥

षष्ठेशयुक्त लग्नेशो बुधषड्वर्गगो यदि।
अल्पदोषस्तस्य भुक्तौ स्यादजीर्णो न संशयः ॥ १२ ॥

षष्ठेश युक्त लग्नेश यदि चन्द्रषड्वर्ग में हो तो दशादि समय में शरीर में अल्पदोष एवं अजीर्ण होता है ॥ १२ ॥

षष्ठेशयुक्त लग्नेशो बुधषड्वर्गगो यदि।
तस्य भुक्तौ भवेद्वायुः वातो वा देहजाड्यकृत् ॥ १३ ॥

बुध षड्वर्गगत षष्ठेश युक्त लग्नेश की अन्तरादि दशा समयों में वायुरोग वा देहशून्यता का रोग होता है ॥ १३ ॥

सारिनाथवि लग्नेशो गुरुषड्वर्गगो यदि।
तस्य भुक्तौ भवेद्रोगः पीडा वा ब्राह्मणेन तु ॥ १४ ॥

बृहस्पति षड्वर्ग स्थित षष्ठेश युत लग्नेश के अन्तरादि में, रोग और ब्राह्मण से कष्ट प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

सषष्ठेशो विलग्नेशो भृगुषड्वर्गगो यदि।
तस्य भुक्तौ भवेत्पीडा रोगःस्त्री सङ्क्रमेन च ॥ १५ ॥

शुक्रषड्वर्गस्थित षष्ठेश युत लग्नेश की दशा में शरीर पीड़ा के साथ स्त्री सङ्क्र अन्य रोग होता है ॥ १५ ॥

सरोगेशो विलग्नेशः शनिषड्वर्गगो यदि।
तस्य भुक्तौ भवेद्वातः सन्निपातोऽथवा नृणाम् ॥ १६ ॥

शनि ग्रह के षड्वर्गस्थ, रोगेश युक्त लग्नेश की दशादिकों में वात रोग होता है, अथवा प्रबल रोग योग से सन्निपात भी होता है ॥ १६ ॥

लग्नेशरोगेशकयोर्भवेन्मारकभुक्तिषु ।
तदाज्ञेयं महत्कष्टं शस्त्रघातादिकं भयम् ॥ १७ ॥

लग्नेश और रोगेश की दशाओं में मारकेश ग्रह की अन्तर दशा में शस्त्रादि घात से शरीर में बहुत पीड़ा होती है ॥ १७ ॥

मृतौ स्थिता सैंहिककेतुमन्दमहीसुताश्वासत्रिसूचिकाभिः।
रोगो नराणामथ तस्य भुक्तौ भवेद्यदामारकसंयुतिश्चेत् ॥१८॥

अष्टम भावगत राहु से युत शनि और मंगल की दशा और मारक ग्रह की अन्तर दशादि प्रत्यन्तर समयों में श्वांस और विसूचिकादि रोग होते हैं ॥ १८ ॥

एवं भ्रात्रादि भवानां नायको यत्र संस्थितः ।
तत्तत्षड्वर्गयोगेन तत्तद्भावफलं वदेत् ॥ १९ ॥

इसी प्रकार भाई (तीसराभावादि) आदिक द्वादश भावों के स्वामी ग्रह जहाँ बैठे हों, उस-उस भाव के पति की षड्वर्गादि स्थिति वश फलादेश करना चाहिए ॥ १९ ॥

लग्नेश रोगनाथौ च निधनेशेन संयुतौ ।
मारकेशयुतौ क्रूरौ रोगनाथांशपो यदा ॥ २० ॥
तस्य भुक्तौ विजानीयात् व्यथा शस्त्रेण वा नृणाम् ।
शुभयोगेन बाधा स्यात्पापयोगेन मृत्युकृत् ॥ २१ ॥

लग्नेश और रोगेश यदि अष्टमेश से युक्त हों, रोगेश के नवांश रोगेश और रोगेश का अंशपति ग्रह यदि क्रूर ग्रह हों तो इनके अन्तर प्रत्यन्तरादि समयों में जातक को शस्त्र पीड़ा होती है। शुभ योग से मात्र बाधा या कष्ट समझते हुए अशुभ सम्बन्धेन तो मृत्यु योग ही कहा जाता है ॥ २०–२१ ॥

जीवांशजीववर्गेशान्मूलांशमूलवर्गतः ।
रोगादीन्प्रवदेत्तत्र तेषां भुक्तिवशात्फलम् ॥ २२ ॥

बृहस्पति और बृहस्पति जिस ग्रह के वर्ग में है, तथा मूलांश मूल वर्ग से षष्ठेश और षष्ठेशांशादि वर्ग स्वभावज ग्रह, धातु-मूल-जीव त्रिविभागीय प्रकृति के विभिन्न विभेदों से रोगोत्पत्ति का विचार करना चाहिए ॥ २२ ॥

विलग्ननाथस्य नवांशनाथो रन्ध्रेशस्वस्थानपदृष्टियुक्तौ ।
मेषस्य षड्वर्गगतौ यदा तौ भुक्तौ तयोर्जम्बुकभीतितो वधः ॥ २३ ॥

लग्नेश का जो नवांश पति, उस पर अष्टमेश स्थानीय राशिपति की दृष्टि या योग हो, और ये दोनों यदि मेष राशि के षड्वर्ग में हों तो उक्त दोनों की दशान्तरादि में श्रगाल से मृत्यु होती है ॥ २३ ॥

आजवर्गगतौ तौ चेद् व्याघ्राद् भीतिं वदेन्नृणाम् ।
युग्मवर्गगतौ तौ चेत्कपिना नाऽत्रसंशयः ॥ २४ ॥

उक्त दोनों ग्रह यदि विषम राशि के वर्ग में होते है तो व्याघ्र से, समराशि के वर्ग में हो तो वानर से भय होता है ॥ २४ ॥

कुलीरवर्गगतौ तौ चेद्रासभाद्भयमादिशेत् ।
सिंहवर्गगतौ तौ चद्भुक्तौ स्याद्व्याघ्रजं भयम् ॥ २५ ॥

उक्त दोनों यदि कर्क राशि के षड्वर्ग में हों तो गदहे से तथा सिंह राशि के वर्गगत होने से व्याघ्र से भय होता है ॥ २५ ॥

अलिवर्गगतौ भुक्तौ तयोः सारकृजं भयम् ।
अथ कार्मुकवर्गस्थौ भुक्तौ स्यादश्वजं भयम् ॥ २६ ॥

वृश्चिक राशि के वर्गस्थ स्थिति में मृगा से, और धनु राशि के वर्गगत स्थिति में घोड़े से भय होता है ॥ २६ ॥

कन्या वर्गगतौ तौ चेद्भल्लूकाद्भयमादिशेत् ।
वणिग्वर्गं गतौ तौ चेद्भुक्तौ तेषां मृगाद्भयम् ॥ २७ ॥

कन्या राशि वर्गगत स्थिति में भालू से, तुला राशि वर्गगत स्थिति से उनकी अन्तर दशाओं में मृग से भय होता है ॥ २७ ॥

मृगवर्गगतौ भुक्तौ तयोः कण्टकजं भयम् ।
मीनवर्गगतौ भुक्तौ मेषाश्वग्रहजं भयम् ॥ २८ ॥

उक्त दोनों की मकर राशिगत स्थिति से कांटे से भय और मीनराशि षड्वर्ग गत स्थिति से, मेढ़ा घोड़ा आदि से भय होता है ॥ २८ ॥

कुम्भवर्गगतौ तौ चेद्गोलाङ्गूलान्महद्भयम् ।
एवं देहादि भावानां षड्वर्गगतिभिः फलम् ॥ २९ ॥

कुम्भ वर्गगत उक्त ग्रहों से, गोलाङ्गूल से भय होता है इस प्रकार लग्नादि द्वादश भावों में षड्वर्ग ग्रह गति से फल समझना चाहिए ॥ २९ ॥

लग्नेश्वरो रन्ध्रपतिश्च युक्तौ वृषे वृषांशे वृषभद्रक्काणे ।
स्थितौ भवेतां यदि वा वृषेण स्यान्नाशस्तयोर्वा मरणं हि भुक्तौ ॥ ३० ॥

लग्नेश और अष्टमेश एक स्थान में वृष राशि, वृष नवांश, वृष के ही द्रक्काण में हों तो वृष (बैल) से, शुक्र की दशा और भुक्ति में मरण होता है ॥ ३० ॥

वृषे युग्मांशगौ तौ चेद् व्याघ्रस्याघातजं भयम् ।
वृषे कर्कांशगौ तौ चेद्धनुराद्ये कल्पयेद् भयम् ॥ ३१ ॥

उक्त दोनों वृष राशिस्थ मिथुन के नवांशगत होते हैं तो उनकी दशादि अन्तर दशाओं में बाघ के आघात जन्य भय होता है। तथा वृष राशिगत कर्क नवांश में होने से उक्त भुक्तियों में धनुष आदि से भय होता है ॥ ३१ ॥

वृषे कन्यांशगौ तौ चेत् कपिना नात्र संशयः ।
वृषे तुलांशगौ तौ चेद् व्याघ्रात् घाततोमृतिः ॥ ३२ ॥

वृषस्थ कन्या नवांशगत स्थिति में उनकी शुक्र-बुध की दशादि में वानर के आघात से भय, वृष राशिस्थ तुला नवांश में हों तो व्याघ्र से भय और मृत्यु होती है ॥ ३२ ॥

वृषे कुम्भांशगौ तौ चेद्गोलाङ्गूलान्मृतिर्भवेत् ।
वृषे मीनांशगौ तौ चेत्तयो भुक्तौ मृगात् भयम् ॥ ३३ ॥

वृष राशिस्थ कुम्भ नवांशगत होने से गोलाङ्गूल रोग से मृत्यु, एवं मीन नवांशगत वृष राशि की स्थिति में उनके स्वामियों के अन्तरादि में हरिण से भय होता है ॥३३॥

वृषे मीनांशगौ तौ चेत्तयो र्भुक्तौ मृगाद्भयम् ।
एवं निश्चत्य मतिमा न्पित्रादीनां मृतिं वदेत् ॥ ३४ ॥

मीन नवांशगत होने से दोनों की अन्तर दशाओं में मृग से भय होता है इस प्रकार पिता मातादि ग्रहों से भी विचार करना चाहिए ॥ ३४ ॥

शरीरनाथो मरणाधिपेन युक्तो मृगेन्द्रे तु मृगाधिपांशाः ।
तयोर्विपाके भयमाखुना मृतिं सर्पात्तदा प्राहुरुदारचित्ताः ॥ ३५ ॥

अष्टमेश युत सिंह राशिगत लग्नेश या मकर के नवांश में हो तो लग्नेश अष्टमेश की दशा या अन्तरदशा में चूहा से भय एवं सर्प से मरण की सही भविष्यवाणी, उदार ज्योतिषी से होनी ही चाहिए ॥ ३५ ॥

सिंह कन्यांशगौ तौ चेन्कपिना च तदा मृतिः ।
मृगराजे तुलांशस्थौ तयोर्भुक्तौ मृतिं वदेत् ॥ ३६ ॥

लग्नेश और अष्टमेश सिंह राशिस्थ कन्या राशि के नवांश में होते हैं तो (सूर्य-बुध) उनकी दशा में वानर से मरण, तथा सिंहस्थ तुला नवांशगत हों तो कारण विशेष से मरण कहना चाहिए ॥ ३६ ॥

अल्यंशगौ मृगेन्द्रे च तयोर्दाये सरीसृपात् ।
चापांशगौ यदा सिंहे तद्वर्षे श्वान्मृतिं वदेत् ॥ ३७ ॥

उक्त दोनों सिंह राशिस्थ वृश्चिक के नवांश में हों तो सांप से मृत्यु, सिंह राशिगत धनु राशिस्थ होने सें उस वर्ष में (जिस वर्ष उक्त दोनों में एक की दशा दूसरे की अन्तरादि दशा हो) कुत्ते से मरण कहना चाहिए ॥ ३७ ॥

मृगांशगौ मृगेन्द्रे च तयोर्दाये ज्वरान्मृतिः ।
कुम्भांशकगतौ तौ चेन्मृगराजे नृपाद्भयम् ॥ ३८ ॥

सिंह राशि गत मकर नवांश में होने से उन दोनों की दशादि में ज्वर रोग से मृत्यु होती है । सिंह गत कुम्भ राशि नवांश में होने से उनकी दशादि में राज से राजभय होता है ॥ ३८ ॥

मीनांशकगतौ सिंहे सारङ्गाद् भयमेतयोः ।
सिंह मेषांशगौ तौ चेद् गोमायोर्भयमादिशेत् ॥ ३९ ॥

उक्त दोनों की सिंह राशि गत मीननवांश स्थिति से हाथी से भय, सिंह राशि गत मेष नवांश में शृगाल से भय होता है ॥ ३९ ॥

वृषांशगौ च सूर्यर्क्षे तयोर्दाये शुना मृतिः।
युग्मांशगौ तौ सिंहे च गोलङ्गूलाद् भयं तयोः॥ ४०॥

उक्त दोनों सिंह राशि गत वृष नवांश में हों तो उनके नाथों की दशादि में कुत्ते के काटने से मृत्यु तथा सिंह राशिगत मिथुन नवांश में गोलाङ्गूल से भय कहना चाहिए॥ ४०॥

कर्कांशगौ तौ सिंहे ह्यग्निदाहान्मृतिं गृहे।
एवं भ्रात्रादि भावानां तत्तद् भुक्तौ मृतिं वदेत्॥ ४१॥

उक्त दोनों की कर्क राशिस्थ सिंह नवांश गत स्थिति से अग्नि दाह से मृत्यु होती है। इस प्रकार भाई आदिक भावेशों के सम्बन्ध से भाई, माता, पिता आदिकों का मरण कहना चाहिए॥ ४१॥

देहाधिपो मृत्युपसंयुतश्च चापांशगौ कार्मुक राशिगौ चेत्।
दाये तयोर्वाजिकृतं च मृत्युं वदन्ति तत्कालविदो महान्तः॥ ४२॥

अष्टमेश युक्त लग्नेश धनु राशिस्थ धनु नवांश में होने से उन दशाओं में घोड़े से मरण कहना चाहिए। कालज्ञ महान् व्यक्तियों का अनुभवगम्य यह फलादेश है॥ ४२॥

चापे मृगांशगौ तौ चेत्सारङ्गाद् भयमादिशेत।
हये कुम्भांशगौ तौ चेद्वराहाद्भयमादिशेत्॥ ४३॥

धन राशिस्थ लग्नेश और अष्टमेश, मकर नवांश गत हों तो इनकी दशान्तर्दशादि समयों में हाथी से भय होता है। धनूराशिस्थ कुम्भ नवांश गत स्थिति में सूअर से भय कहना चाहिए॥ ४३॥

हये मीनांशगौ तौ चेत्पाके नक्राद्भयं भवेत्।
मेषांशगौ तौ चापे तु तयोर्दाये चतुष्पदात्॥ ४४॥

धनू राशिस्थ मीन नवांश में नक्र मकर से, मेष नवांशस्थ होने से चतुष्पद घोड़ा हाथी कुत्ता भैंसा आदि से भय होता है॥ ४४॥

हये वृषांशगौ तौ चेद्रासभाद्भयमादिशेत्।
युग्मांशगौ तु चापे तु वानराद् भययादिशेत्॥ ४५॥

वृषांश में धनूराशिस्थ लग्नेशाष्टमेश की दशादि में गदहे से भय कहना चाहिए। धनूराशिस्थ मिथुन नवांश की स्थिति में बन्दर से भय होता है॥ ४५॥

कर्कांशगौ हयाङ्के तु चाखुनाभयमेतयोः।
सिंहांशगौ हयाङ्के तु जम्बूकाद्भयमादिशेत्॥ ४६॥

धनूराशिगत कर्क नवांशस्थ लग्नेशाष्टमेश की दशादि समयों में चूहा (मूषा) से भय, सिंह राशि नवांश गत उक्त दोनों की स्थिति से सियार से भय होता है॥ ४६॥

कन्यांशगौ तु चापे तु गोलाङ्गूलाद्भयं वदेत्।
तुलांशगौ हयाङ्गे तु उष्ट्रान्मरणमेतयोः ॥ ४७ ॥

उक्त दोनों धनू राशि स्थित कन्या नवांश गत हों तो गोलाङ्गूल से भय कहना चाहिए। तथा धनू राशिस्थ तुलांशगत होने से उनके दशादि अन्तर दशाओं में ऊँट से भय होता है ॥ ४७ ॥

अल्यंशगौ हयाङ्गे तु तयोर्दाये सरीसृपात्।
एवं भ्रात्रादि भावानां फलमाहुर्मनीषिणः ॥ ४८ ॥

उक्त दोनों की धनूराशिस्थ वृश्चिकांश की स्थिति से सर्प से भय होता है। इसी प्रकार भ्रातृ प्रभृति भावेशों का अष्टमेश ग्रह सम्बन्ध से भाई माता पुत्रपितादि का विचार करना चाहिए ॥ ४८ ॥

विलग्नपो नैधननायकश्च मृगे मृगाशावगतौ च युक्तौ।
प्रीतिर्भवेदाशु तयोर्हि भुक्तौ विवाहहेतुः प्रवदन्ति सन्तः ॥ ४९ ॥

मकर राशिगत लग्नेश और अष्टमेश मकर के ही नवांश में हों तो उनकी दशा में विवाह सम्बन्ध के लिए शीघ्र परस्पर प्रीति होती हैं। ऐसा विद्वानों का मत है ॥ ४९ ॥

कुम्भांशगौ मृगाङ्गे च भल्लूकाद्भयमादिशेत्।
झषांशगौ मृगाङ्गे च सारङ्गाद्भयमेतयोः ॥ ५० ॥

मकर राशिस्थ कुम्भ नवांश गत स्थिति से उनकी दशाओं में भालू से भय, मगर राशिस्थ मीन नवांश में हाथी से भय होता है ॥ ५० ॥

मेषांशगौ मृगाङ्गे तु जलाद्भयं विनिर्दिशेत्।
वृषांशगौ मृगास्ये तु वज्राद्भयं विनिर्दिशेत् ॥ ५१ ॥

उक्त दोनों की मकर राशिस्थ स्थिति में मेष नवांश गत स्थिति से दशाओं में जल से भय, मकर राशिस्थ वृषांश से व्रज से भय होता है ॥ ५१ ॥

युग्मांशगौ मृगाङ्गे तु हरिणान्मृतिरेतयोः।
कर्कांशगौ मृगास्ये तौ तयोर्दाये मृतिर्गजात् ॥ ५२ ॥

मकर राशिस्थ मिथुन नवांश गत से हरिण से, कर्क नवांश स्थिति से हाथी से मृत्यु होती है ॥ ५२ ॥

सिंहांशगौ मृगाङ्गे तु महापातकजं भयम्।
कन्यांशगौ मृगाङ्गे तु वानराद् भयमादिशेत् ॥ ५३ ॥

मकरस्थ सिंह नवांश से महापातक जन्य भय, कन्या नवांश गत से वानर से भय होता है ॥ ५३ ॥

तुलांशगो मृगास्ये तु नकुलान्मृतिरेतयो: ।
वृश्चिकांशगो मृगास्ये तु मार्जारान्मृतिराविशेत् ॥ ५४ ॥

तुला नवांशस्थ मकर राशि में, नकुल से, मकर राशिस्थ वृश्चिक नवांश में लग्नेशाष्टमेश की दशान्तर्दशादि में बिल्ली से भय कहना चाहिए ॥ ५४ ॥

धनुरंशगो मृगास्ये तु रासभाद्भयमादिशेत् ।
एवं निश्चित्य मतिमान् पित्रादीनां फलं वदेत् ॥ ५५ ॥

मकर राशिस्थ लग्नेशाष्टमेश धनू राशि नवांशस्थ हों तो रासभ (गदहे) से भय होता है ।

बुद्धिमान् दैवज्ञ ने इस शैली से पिता मातादि सभी भावों का विचार कर उनकी मृत्यु का कारण बता देना चाहिए ॥ ५५ ॥

इति पञ्चमपरिच्छेद:

अथ षष्ठपरिच्छेद:

अथ वक्ष्ये खगेन्द्राणां जातिभेदात्फलागमम् ।
बालानां बोधनार्थाय सारं सङ्ग्रह्य शास्त्रत: ॥ १ ॥

ग्रहों की उस जातिभेद का जो शास्त्रों का तत्त्व रूप संग्रह है, उसका वर्णन किया जा रहा है । बालानां बोधनार्थाय का स्पष्ट तात्पर्य यह है कि यदि अवस्था से जातक विद्वान् ८०, ९०, १००, १२० वर्ष की आयु का भी वृद्धावस्था का क्यों न हो, किन्तु जिस विषय में उसका अध्ययनाध्यापनादि प्रवेश नहीं हुआ है, उस विषय के लिए अध्ययन प्रेमी शतायु पुरुष को भी बाल शब्द से सम्बोधित किया जाता है, क्योंकि इस अध्ययन में अभी वह बालक रूप है, आचार्यों से इसलिए "बालकों के सुख बोधाय" उक्त पद्य का प्रयोग हुआ है ॥ १ ॥

विप्रौ देवेज्यभृगुजौ क्षत्रियौ रविभूमिजौ ।
वैश्यौ निशाकरबुधौ शनि: शूद्रस्तमोऽन्त्यज: ॥ २ ॥

गुरु और शुक्र ग्रह ब्राह्मण, सूर्य मंगल क्षत्रिय, चन्द्र बुध वैश्य, शनि शूद्र और राहु को अन्त्यज कहा गया है ॥ २ ॥

मीनादय: क्रमादेते विप्रक्षत्रियविशोऽङ्घ्रिजा: ।
एतेषां दृष्टियोगाभ्यां फलमाहुर्मनीषिण: ॥ ३ ॥

मीन राशि ब्राह्मण, मेष क्षत्रिय, वृष वैश्य और मिथुन शूद्र राशि क्रम से मीन-कर्क और वृश्चिक राशियां ब्राह्मण, मेष-सिंह और धनू राशियां क्षत्रिय, वृष-कन्या और मकर

राशियाँ वैश्य तथा मिथुन-तुला और कुम्भ राशियों की वर्ण से शूद्र संज्ञा कही गई है ॥ ३ ॥

सूर्यो गुरुः कुजः सौम्यो गुरुर्भ्रश्च सितः शनिः ।
गुरुश्चन्द्रेज्यमन्दाश्च क्रमशो भावकारकाः ॥ ४ ॥

सूर्य-गुरु-मंगल-चन्द्र-गुरु-बुध-शुक्र-शनि-गुरु-चन्द्र-गुरु और शनि ये ग्रह लग्नादि द्वादश भावों के कारक होते हैं । जैसे सूर्य ग्रह लग्न का कारक है, बृहस्पति ग्रह धन कारक कहा गया है, इत्यादि समझिये ॥ ४ ॥

पिता रविर्भातृकरो शशाङ्को भ्राता कुजो मातुलवर्गसौम्यः ।
पुत्रो गुरुर्भार्गवकामिनीशो मित्रे रवौ राहुशनी च शत्रू ॥ ५ ॥

सूर्य पितृकारक, मातृकारक चन्द्रमा, बुध शनि और शुक्र भ्रातृ कारक, पुत्रकारक मंगल, सूर्य मित्रकारक, राहु और शनि शत्रु कारक होके हैं ॥ ५ ॥

पिता रविर्मातृकरः शशाङ्को भ्राता कुजो मातुलवर्ग सौम्यः ।
पुत्रोगुरुर्भार्गवकामिनीशा मित्रे राहुशनी च शत्रू ॥ ६ ॥

प्रकारान्तर से ५ श्लोक का आशय व्यक्त हुआ है ॥ ६ ॥

शनि भौमौ पितृक्षेत्रे पक्षा जीवज्ञभार्गवाः ।
मातुर्भावे तु राजानौ रविचन्द्रमसौ स्मृतौ ॥ ७ ॥
भूसूनुर्नायको ज्ञेयो बुधः सूनुः प्रकीर्तितः ।
सचिवौ भृगुजीवौ च दृष्टियोगफलं पृथक् ॥ ८ ॥

शनि मंगल पितृ भाव के सहयोगी, बुध-बृहस्पति और शुक्र ग्रह भातृभाव के सहयोगी, सूर्य चन्द्र राज सहायक, मंगल राजनायक, बुध राजकुमार का सहयोगी, गुरु शुक्र राष्ट्र को मन्त्रणा देते हैं । इन सभी ग्रहों की दृष्टियोग से पृथक्-पृथक् फलादेश करना चाहिए ॥ ७-८ ॥

शनिं च मेषे पितरमाहुः कालविदो जनाः ।
ग्रहाणां फलदातृत्वं तत्तत्पाके विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥

मेष राशिगत शनि भी पितृकारक कह गया है । ग्रहों की अपने-अपने स्थानों में फल-दान की शक्ति उत्पन्न होती है ॥ ९ ॥

यद्भावेशो यस्य षड्वर्ग संस्थस्तत्पाके द्रव्यलाभो नराणाम् ।
यस्तद्द्रव्यं तस्य खेटस्य विन्द्यात्तद् द्रव्यं तस्य पाके वदन्ति ॥ १० ॥

जो भावेश जिस ग्रह के षड वर्ग में स्थित है, उस उस ग्रह की दशादि में उस उस ग्रह के कथित द्रव्य की प्राप्ति होती है ॥ १० ॥

पाकेशे भास्करांशस्थे भूपान्मानं विनिर्दिशेत् ।
अथवा पितृवर्गाद्वा चन्द्रंशान्मातृवर्गतः ॥ ११ ॥

सूर्य नवांश स्थित दशा स्वामी के समय में राजा से मान धन प्राप्ति होती है अथवा पितृ सम्बन्धियों से धनाप्ति होती है । चन्द्र नवांश से मातृ वर्ग से लाभ होता है ॥११॥

कुजांशात्पुत्रवर्गेण नायकाद्वा फलं वदेत् ।
सोम्यांशाद् भ्रातृवर्गेण राजपुत्रेण वा फलम् ॥ १२ ॥

मंगल नवांश स्थित दशा स्वामी से पुत्र वर्ग अथवा सेना नायक से धन प्राप्ति होती है । बुध नवांश से भ्रातृ वर्ग या राज पुत्र से लाभ होता है ॥ १२ ॥

गुर्वंशे भ्रातृवर्गेण सचिवाद्वा फलं वदेत् ।
शुक्रांशान्मातृवर्गेण स्त्रीवर्गाद्वाफलं वदेत् ॥ १३ ॥

गुरु नवांशगत दशा स्वामी मातृ या मन्त्री वर्ग द्वारा, शुक्र नवांशगत हो तो मातृवर्ग या स्त्री वर्ग द्वारा शुभफलाप्ति कहनी चाहिए ॥ १३ ॥

शन्यंशाच्छूद्रवर्गेण, प्रेष्यवर्गात्फलन्तथा ।
राहोः फलं शूद्रवर्गात्केचिदाहुर्मनीषिणः ॥ १४ ॥

शनि नवांशगत दशाधीश से शूद्र वर्ग से, या भृत्य से लाभ होता है । आचार्यों के मतान्तर से राहु की उक्त स्थिति से शूद्र से लाभ होता है ॥ १४ ॥

पाके फलं पैतृकं तु न भवेच्छनिभौमयोः ।
पाके जीवज्ञशुक्राणां मातुलादभृत्यवर्गतः ॥ १५ ॥

शनि मंगल की दशाओं में पितृ सम्बन्धी फलाभाव और गुरु शुक्र की दशाओं में मामा और नौकर वर्ग से लाभ नहीं होता है ॥ १५ ॥

दशा विपाके सुरपूजितस्य ब्रह्मत्वतः ब्राह्मणजातिमूलात् ।
अंशानुरूपं फलमाहुरार्याः पादे दशायाश्च वदन्ति धीराः ॥ १६ ॥

बृहस्पति की दशान्तरदशादि में ब्राह्मणा जाति से अंशानुकूल नवांशानुकूल फल प्राप्ति होती है । प्रथम नवांश में ⅓ फल द्वितीय में २, तृतीय में तिहाई, छठे नवांश में दो तिहाई एवं अन्तिम नवांश में पूर्ण फलाप्ति समझ कर आदेश करना चाहिए ॥ १६ ॥

इति षष्ठपरिच्छेदः

अथ सप्तमपरिच्छेदः

फलानि नक्षत्रदशाप्रकारेण विवृण्महे ।
दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता ॥ १ ॥

कृत्तिकर्क्षगणस्तत्र यावज्जन्मर्क्षगं तथा ।
नवभिश्च हरेद्भागं शेषन्तु स्वदशा भवेत् ॥ २ ॥

रवौ रसो विधोः पंक्तिः भौमे सप्त विधुन्तुदे ।
अष्टादश सुराचार्ये षोडशैकोन विंशतिः ॥ ३ ॥

शनौ सप्तदश सौम्ये केतौ सप्त प्रकीर्तिताः ।
नखाः शुक्रस्य विज्ञेया विंशोत्तरशते मतम् ॥ ४ ॥

उक्त पद्यों का स्पष्टाशय लघुपाराशरी पूर्वार्ध में देखिए ॥ १-२-३-४ ॥

रव्यादीनां दशा गुण्या त्रिभिः स्व-स्वदशाहृता ।
घस्राद्यन्तर्दशामानं विंशोत्तरं शतात्मके ॥ ५ ॥

लघुपाराशरी देखिए ॥ ५ ॥

मन्दसौम्यसिताः पापाः शुभौ गुरुदिवाकरौ ।
न शुभं योगमात्रेण प्रभवेच्छनिजीवयोः ॥ ६ ॥

परतन्त्रस्य जीवस्य पापकर्मापि निश्चितम् ।
कविः साक्षान्निहन्ता स्यान्मारकत्वेन लक्षितः ॥७॥

मन्दादयो न हन्तारो भवेयुः पापिनो ग्रहाः ।
शुभाशुभफलान्येवं ज्ञातव्यानि क्रियोद्भवे ॥ ८ ॥

शनि-बुध शुक्र को पाप ग्रह, सूर्य बृहस्पति शुभ ग्रह हैं। शनि युक्त गुरु भी परतन्त्र हेतु से पाप ग्रह हो जाता है। स्वयं मारकेश होने से शुक्र ही मारकेश हो जाता है। पापी ग्रह होते हुए भी शनि प्रबल मारक नहीं होता है। मेष राशि गत शनि से पूर्वोक्त विचार पूर्वक विचार करना चाहिए ॥ ६-७-८ ॥

जीवशुक्रेन्दवः पापाः शुभौ शनिशशिसुतौ ।
राजयोगकरः साक्षादेक एव रवेः सुतः ॥ ९ ॥

चन्द्र-गुरु-शुक्र पाप ग्रह, बुध और शनि शुभग्रह हैं। शनि ग्रह ही एक स्वतन्त्र रूपेण राजयोगकारक होता है ॥ ९ ॥

जीवादयो ग्रहाः पापाः सन्ति मारकलक्षणाः ।
बुधैस्तत्रफलान्येवं ज्ञेयानि वृषजन्मनः ॥ १० ॥

जीवादि बृहस्पति-शुक्र चन्द्रमा ये मारक ग्रह हैं। यह स्थिति वृषराशिज जातक के जन्म से विचारना चाहिए ॥ १० ॥

भौमजीवारुणाः पापा एक एव कविः शुभः ।
शनैश्चरेण जीवस्य योगो मेषभवो यथा ॥ ११ ॥

सूर्य मंगल और बृहस्पति पाप ग्रह हैं। मात्र शुक्र ही एक शुभ ग्रह है। मेषराशिस्थ के लिए शनियुत बृहस्पति पाप ग्रह कहा गया है; तद्वत् यहाँ समझिये। बृहस्पति स्वतन्त्र पाप नहीं है ॥ ११ ॥

नायं शशी निहन्ता स्यात्कारयेत्पापनिष्फलम् ।
ज्ञातव्यानि द्वन्दजस्य फलान्येतानि सूरिभिः ॥ १२ ॥

मिथुन राशि लग्नज के लिए, केवल चन्द्रमा मारक नहीं होता अपि च पाप योग को निष्फल करने में चन्द्रमा समर्थ होता है ॥ १२ ॥

भार्गवेन्दुसुतौ पापौ भूसुताङ्गिरसौ शुभौ ।
एक एव भवेत्साक्षात् भूसुतो योगकारकः ॥ १३ ॥

शुक्र-चन्द्रमा पाप ग्रह हैं। मंगल-गुरु शुभ ग्रह हैं। केवल मंगल ग्रह योगकारक होता है ॥ १३ ॥

निहन्ता कविरन्ये तु पापिनो मारकाह्वयाः ।
कुलीरसभवस्यैवं फलान्यूहयानि सूरिभिः ॥ १४ ॥

कर्क राशिगत जातक के लिए शुक्र मारक होते हुए पाप ग्रह भी मारक होते हैं ॥ १४ ॥

रोहिणेयसितौ पापौ कुजजीवौ शुभावहौ ।
प्रभवेद्योगमात्रेण न शुभं कुजशुक्रयोः ॥ १५ ॥

जैसे बुध-शुक्र पाप ग्रह हैं, वैसे मंगल-बृहस्पति शुभ ग्रह होते हैं। शुक्र-मंगल का योग शुभाय नहीं होता है ॥ १५ ॥

घ्नान्ति सौम्यादयः पापाः मारकत्वेन लक्षिताः ।
एवं फलानि वेद्यानि सिंहजस्य मनीषिभिः ॥ १६ ॥

बुधादि ग्रह मारक होने पर प्रबल होते हैं। सिंह लग्न राशि से उक्त विचार फल होता है ॥ १६ ॥

कुजजीवेन्दवः पापा एक एव भृगुः शुभः ।
भार्गवेन्दुसुतावेव भवेतां योग कारकौ ॥ १७ ॥

चन्द्र, मंगल, गुरु पाप ग्रह होते हैं। केवल शुक्र शुभ होता है। ऐसी स्थिति में शुक्र और बुध योगकारक होते हैं ॥ १७ ॥

न हन्ता कविरन्ये तु मारकास्ते कुजादयः ।
प्रतीक्ष्येत फलान्येवं कन्याराशि भवस्य हि ॥ १८ ॥

कन्या लग्न राशिज जातकों के लिए शुक्र मारक नहीं होता, मंगलादिक पाप ग्रह मारक होते हैं ॥ १८ ॥

जीवार्कभूसुताः पापाः शनैश्चर बुधौ शुभौ ।
भवेतां राजयोगस्य कारकौ चन्द्रचन्द्रजौ ॥ १९ ॥

सूर्य, मंगल और जीव पाप होते हैं और शनि-बुध शुभ होते हैं । ऐसी स्थिति में चन्द्रमा और बुध राजयोग कारक हो जाते हैं ॥ १९ ॥

कुजो न हन्ता जीवाद्यः परे मारक लक्षणा ।
निहन्तारः फलान्येवं ज्ञातव्यानि तुलाभवः ॥ २० ॥

तुला लग्न राशिज के लिए वृश्चिकेश मारक नहीं होता । बृहस्पति आदिक ग्रहों में मारकत्व धर्म आता है ॥ २० ॥

सौम्यभौमसिताः पापाः शुभौ गुरु निशाकरौ ।
सूर्यचन्द्रमसावेवं भवेतां योगकारकौ ॥ २१ ॥

किसी लग्न राशि से बुध, मंगल और शुक्र पाप ग्रह हो जाते हैं, बृहस्पति चन्द्रमा में शुभत्व से चन्द्रमा योगकारक हो जाता है ॥ २१ ॥

जीवो न हन्ता सौम्याद्याः परे मारक लक्षणः ।
तत्तत्फलानि विज्ञेयानि वृश्चिकजन्मनः ॥ २२ ॥

वृश्चिक लग्न राशिजों के लिए गुरु मारक नहीं होता, अपिच अन्य सौम्य ग्रह मारक होते हैं ॥ २२ ॥

एक एव कविः पापः शुभौ भौमदिवाकरौ ।
योगौ भास्करसौम्याभ्यां न तु हन्ताऽशुमत्सुतः ॥ २३ ॥

मात्र शुक्र एक पाप ग्रह है । मंगल-सूर्य शुभ हो जाते हैं । सूर्य-बुध से राजयोग होता है । शनि मारक नहीं होता है ॥ २३ ॥

घ्नन्ति शुक्रादयः पापा मारकत्वेन लक्षिताः ।
ज्ञातव्यानि फलान्येवं धनुषश्च मनीषिभः ॥ २४ ॥

धनु राशि से शुक्रादिक मारक होने से मारक होते हैं ॥ २४ ॥

कुजेन्दवः पापाः शुभौ भार्गवचन्द्रजौ ।
स्वयं चैव न हन्ता स्यात् मन्दो भौमादयः परे ॥ २५ ॥
तल्लक्षणनिहन्तारः कविरेकः सुयोगकृत् ।
ज्ञातव्यानि फलान्येवं बुधैश्च मृगजन्मनः ॥ २६ ॥

मकर राशिज के लिए चन्द्र, मंगल और गुरु पाप ग्रह हो जाते हैं। शुक्र-चन्द्रमा शुभ ग्रह होते हैं। शनि मारक नहीं होता। मारक लक्षण लक्षित होने से भौमादिक ग्रह मारक हो जाते हैं। मात्र शुक्र ग्रह योगकारक हो जाता है ॥ २५–२६ ॥

जीवचन्द्रकुजाः पापा एको दैत्यगुरुः शुभः।
राजयोग करो भौमः कविरेव बृहस्पतिः ॥ २७ ॥

निहन्ता घ्नन्ति भौमाद्या मारकत्वेन लक्षिताः।
एवं फलान्यूह्यन्त्येव हि झष जन्मनः ॥ २८ ॥

मीन राशिज जातक के लिए सूर्य, शुक्र, बुध और रवि पाप ग्रह हैं। चन्द्र-मंगल शुभ ग्रह हैं। मंगल-बृहस्पति योगकारक होते हैं। मारक सम्बन्ध सम्बन्धित मंगल मारक नहीं होता। मारक लक्षण लक्षित बुध और शनि मारक होते हैं ॥ २७–२८ ॥

मन्दशुक्रांशुमत्सौम्याः पापाः भौमविधुः शुभौ।
महीसुतगुरू योगकारको नैव भूसुतः ॥ २९ ॥

मारको मारकाभिज्ञो मन्दज्ञौ घ्नन्ति पापिनौ।
इत्यूह्यानि बुधैस्तत्र फलानि झषजन्मनः ॥ ३० ॥

मंगल और गुरु की योग कारिता से शनि शुक्र सूर्य और बुध ग्रह पाप ग्रह तथा मंगल और चन्द्रमा शुभ ग्रह होते हैं ॥ २९ ॥

शनि और बुध दोनों पाप ग्रह मारकेश सम्बन्ध से मारक होते हैं ये विचार मीन लग्न जन्मा जातक से करना चाहिए ॥ ३० ॥

एतच्छास्त्रानुसारेण मारकान्निर्दिशेद्बुधः।
चन्द्रसूर्यौ विना सर्वे मारकाः परिकीर्तिताः ॥ ३१ ॥

स्वदशायां स्वभुक्तौ च नराणां निधनं नहि।
क्वचिद् भुक्तौ समिच्छन्ति स्वभुक्तौ न कदाचन ॥ ३२ ॥

इस शास्त्रानुसार विद्वान् दैवज्ञ को भविष्य विचार करना चाहिये।

चन्द्र-मंगल को छोड़कर सभी ग्रह मारक हो जाते हैं।

मारक ग्रह की दशा में मरण नहीं होता। मारक ग्रह की दशा में किसी अन्य ग्रह की अन्तर्दशा में जातक का निधन होता है। इसी प्रकार किसी ग्रह की दशा में मारक ग्रह की अन्तर्दशा में भी मरण नहीं हो सकता इत्यादि............ ॥ ३२ ॥

इति सप्तमपरिच्छेदः

अथाष्टमपरिच्छेदः

लग्नाद्विचिन्त्यं मूर्तिकीर्तिसाङ्गोपाङ्गनिरूपणम् ।
स्थितिस्वरूपसम्पत्तिर्जन्मलग्नगतं फलम् ॥ १ ॥

जन्म लग्न से जातक का रंग, रूप, कीर्ति, स्थिति, स्वरूप और सम्पत्ति आदि का साङ्गोपाङ्ग निरूपण करना चाहिये ॥ १ ॥

धनं सुखं च भुक्तिं च सत्यं च बहुवक्तृताम् ।
सव्यनेत्राल्पहारश्च धनस्थानाद्विचिन्तयेत् ॥ २ ॥

दूसरे स्थान (भाव) से धन सुख, भोग, बहुभाषण, सत्यभाषण, दक्षिण नेत्र और अल्पाहारादि विचार करने चाहिये ॥ २ ॥

भ्रातृकण्ठौ विक्रमश्च क्षुधाभरणपात्रताम् ।
भ्रातृस्थानफलं सर्वं तत्तन्नामफलं दिशेत् ॥ ३ ॥

तीसरे भाव से भाई, गला, विक्रम, क्षुधा, भूषण, पात्रता के साथ अन्य भ्रातृस्थान जन्य विचार करने चाहिये ॥ ३ ॥

बन्धुबाहनमातुश्च सिंहासनसुखगृहाः ।
मित्रबाहुरिदं सर्वं बन्धुस्थानाद्विचिन्तयेत् ॥ ४ ॥

बन्धु, वाहन, माता, राज्य, सुख-घर-सुहृद् मित्र और बाहुबल आदि का विचार चतुर्थ भाव से करना चाहिये ॥ ४ ॥

पुत्रो बुद्धिश्च मित्रं च देवताभक्तिरुत्तमा ।
हृदयं मातुलश्चैव सुतस्थानाद्विचिन्तयेत् ॥ ५ ॥

पुत्र, बुद्धि, मित्र, देवता, भक्ति, हृदय और मामा परिवार का विचार पञ्चम भाव से करना चाहिये ॥ ५ ॥

रिपुज्ञातिबलं रोगमुदरं शत्रुरेवच ।
षष्ठस्थानादिदं नाम तत्तन्नामफलं दिशेत् ॥ ६ ॥

रिपु-ज्ञाति-बल-रोग-उदर-शत्रु प्रभृति का विचार षष्ठस्थान से करना चाहिये ॥६॥

कलत्रभोगश्छत्रं च दन्तनाभिश्च रोगवान् ।
गुदं सङ्कटके चैव आयुःस्थानाद्विचिन्तयेत् ॥ ७ ॥

सप्तम भाव से स्त्री सम्बन्धी भोग, छत्र, दन्त, नाभि रोगादिक का विचार करना चाहिये तथा गुप्तस्थान, जीवन, मरण प्रभृति विचार अष्टम भाव से करना चाहिये ॥७॥

भाग्यं तीर्थं च धर्मं च पितृस्थानमिति क्रमात् ।
मानराज्यत्यागकीर्तिः कर्मव्यापारमेव च ॥ ८ ॥

नवम भाव में भाग्य-तीर्थ-धर्म-पिता-गुरु आदि सभी का विचार करना चाहिये तथा मान, राज्य, त्याग, कीर्ति, कर्म और व्यापार का विचार दशम भाव से करना चाहिये ॥ ८ ॥

लाभं च ज्येष्ठभ्रातरं कर्णजङ्घमिति क्रमान् ।
रिष्फव्ययं पितृधनं वादयोषादिनाम च ॥ ९ ॥

ज्येष्ठ भ्रातृ, अनेक प्रकार के लाभ, कान, जङ्घा आदि का लाभभाव एकादश से विचार करना चाहिये। इसी प्रकार व्यय अर्थात् १२ वें भाव से व्यय, पिता का धन, वाद-बिवाद, स्त्री आदि का नाम विचारादि करना चाहिये ॥ ९ ॥

कुम्भकर्कटगोमीनमकरालितुलाधराः ।
सजला राशयः प्रोक्ता निर्जला शेष राशयः ॥ १० ॥

वृष, कर्क, मकर, कुम्भ और मीन ये पाँचों राशियां जलचर राशि कही गयी हैं। शेष मेष, मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और धनु राशियों को निर्जल राशि कहा गया है ॥ १० ॥

रविभौमार्कजाः शुक्राः सजलो चन्द्रभार्गवौ ।
बुधवाचस्पती ज्ञेयो सजलो जलराशिगो ॥ ११ ॥

इति अष्टम परिच्छेदः

चन्द्रमा और शुक्र ग्रह सजल ग्रह हैं। बुध और बृहस्पति भी सजल ग्रह हैं, अतएव सूर्य, मंगल, शनि, शुक्र (अग्निस्वरूपाः) अग्निग्रह कहे जाते हैं।

इत्युड्डदायप्रदीपः समाप्तः

12810

र कृतियाँ:

मुहूर्त चिन्तामणि

रह प्रकरण हैं : (१) शुभाशुभ, (२) नक्षत्र, (३) संक्रान्ति, (., (५) संस्कार, (६) विवाह, (७) वधू प्रवेश, (८) द्विरागमन, (९) अग्न्याधान, (१०) राजाभिषेक, (११) यात्रा, (१२) वास्तु, (१३) गृह-प्रवेश। इन तेरह प्रकरणों में तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, लग्न, गर्भाधान, नामकरण, उपनयनादि संस्कारों के, गृहारम्भ, गृह-प्रवेश, देश-विदेश यात्रा, राजाभिषेक, अभियान आदि के लिए शुभ मुहूर्त देखने की विधि बतलाई गई है।

(अजिल्द) रु० १४५; (सजिल्द) रु० २००

ताजिक नीलकण्ठी

आचार्य नीलकण्ठकृत प्रस्तुत ग्रन्थ तीन तन्त्रों में विभाजित है: (१) संज्ञातन्त्र—जिसमें राशियों का दिग्देश स्वरूपादि वर्णन, वर्ष कुण्डली ज्ञान, ग्रहों के बलों अथवा दृष्टियों का विचार किया गया है; (२) वर्षतन्त्र—जिसमें वर्ष-मास-दिनेशादि ग्रह निरूपण, द्वादश भावों का फलविचार पर प्रकाश डाला गया है; (३) प्रश्नतन्त्र—जिसमें जय, पराजय, शरीर-रोग, धन-पुत्र-स्त्री-आयु प्रभृति अनेक प्रश्नों का प्रश्न लग्नानुसार विचार किया गया है। (अजिल्द) रु० ९८; (सजिल्द) रु० १४५

गणित-प्रवेशिका

प्राचीन समय में अंकगणित की पुस्तकें भी संस्कृत भाषा में लिखी गईं थीं। प्रस्तुत पुस्तक में स्थान-स्थान पर अंकगणित के सूत्रों का दिग्दर्शन किया गया है।

रु० २.५०

बृहदवकहडाचक्रम्

यह पुस्तक ज्योतिषशास्त्र को सरलता से सुबोध कराने हेतु प्रस्तुत की गई है। ज्योतिष के मुख्य पांच अङ्गों (पञ्चांग) का परिचय, पञ्चांग समझने के लिए समयादिकों की परिभाषा, तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करणादि का ज्ञान कराया गया है। रु० ९

ज्योतिष में स्वरविज्ञान का महत्त्व

भविष्य के ज्ञान के लिए फलित ज्योतिष की अनेकविध सरणियों में स्वरविज्ञान ज्योतिष-शास्त्र की एक सर्वमान्य प्राचीन पद्धति है जिसमें मनुष्य के नाम के अनुसार भविष्य का ज्ञान किया जाता है। प्राचीन यामल ग्रंथों में भी इस विज्ञान पर विस्तृत विचार-विमर्श हुआ है। रु० १५

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना बंगलोर मद्रास

मूल्य : रु० ४८